SHASHVAT VANI 1968 G.K.V.

वर्ष ८ : अंक ४
रजि० नं० ६६८६/६०
अप्रैल, १९६८

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः

विषय-सूची

भारतीय संस्कृति परिषद का मासिक मुखपत्र

एक प्रति ०.५०
वार्षिक ५.००

सम्पादक
अशोक कौशिक

सातवलेलकर प्रशस्ति-गान

रचयिता—श्री राजपाल शास्त्री

श्रीसम्पन्न ज्ञान-गुण-आकर, नागर, न्याय-नयज्ञ।
पावन - वैदिक-पंथ पथिक तुम, वेद - शास्त्र - तत्वज्ञ। १॥
दया दान - दाक्षिण्य - दक्ष हो, वरद-विभूति-वरिष्ठ।
दान्त, शान्त, निर्भ्रान्त-नीतिविद्, महा-महिम्-मंहिष्ठ॥ २॥
मोह-माधुरी - मुक्त-मधुप-मन, निगमागम-रस-लीन।
दम्भ-दर्प - निर्लिप्त - प्रचेतस्, धीमत्, धर्म-धुरीण॥ ३॥
रमण-वेद-वारिधि कर पाए, ज्ञान - रत्न-मणि-माणिक।
साधक, स्तुत्य साधना तेरी, अतिशय प्रामाणिक॥ ४॥
तपो-निष्ठ, राजर्षि, योगविद्, सर्व - शास्त्र - मर्मज्ञ।
वरद पुत्र, वर-विबुध, विनायक, कवि-कोविद-कर्मज्ञ॥ ५॥
ले वैदिक-सन्देश-दिव्य-द्युति, द्योतित किए दिगन्त।
कल्प-कल्प तक आर्य-संस्कृति, जन-मन करे ज्वलन्त॥ ६॥
राष्ट्र-भक्त, वर - वेद-पारखी पारमोदात्त, विनीत।
यत्र - तत्र हे आर्य - पुरोधा, गूंजे गौरव - गीत॥ ७॥
नमोवै वेद - व्याख्यात्रे ब्रह्म - विद्या - निरूपिणे।
नमः ते योग युक्ताय, विबुधाय तपस्विने॥ ८॥

सम्पादक
अशोक कौशिक

वर्ष : ८

अङ्क ४

रजि० नं० ६६८६/६०

अप्रैल, १९६८

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः

सम्पादकीय

भारत का तीसरा रोग गांधीवाद

इसी विषय पर पूर्व के लेखों में हम यह बता चुके हैं कि गांधीवाद के सिद्धान्त हैं :—

(१) सर्वत्र और सर्वदा अहिंसा का व्यवहार ;

(२) दूसरों से सदा सहयोग करने का स्वभाव ।

इस दूसरे सिद्धांत में, हमने बताया है कि एक भारी भूल निहित है—सहयोग अथवा समझौते की प्रवत्ति में अपने उद्देश्य को भूल जाना । इस प्रवत्ति की तुलना उस बालक के व्यवहार से की जा सकती है, जो मार्ग में चलता-चलता तितली को पकड़ने लग जाता है और अपने जाने के लक्ष्य को ही भूल जाता है ।

इसका उदाहरण १९१९ में अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन में पारित प्रस्ताव पर गांधी जी का व्यवहार है । वह सब कुछ हम पहले लेख में बता चुके हैं ।

यह प्रवृत्ति दूषित है । इससे न तो देश का कल्याण हो सकता है और न ही व्यक्ति का अपना । १९१९ में 'रौलेट ऐक्ट' के समय गांधी जी कांग्रेस से पारित औपनिवेशिक स्वराज्य वाले प्रस्तावके पक्ष में थे । परन्तु जब १९१९ के सुधार मिले तो उन पर लट्टू होकर उन सुधारों को ईमानदारी से प्रयोग करने पर तैयार हो गए । दूसरों ने कहा कि कम से कम इतना प्रस्ताव में लिख दिया जाए कि यदि गवर्नरों ने, जिनके पास सब प्रकार के अधिकार हैं और जिनकी नियुक्ति इंग्लैंड का 'सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फार इण्डिया' करती है, जनता के प्रतिनिधियों के कार्य में बाधा डाली तो कांग्रेस कानून को अस्वीकार कर आन्दोलन का मार्ग स्वीकार कर लेगी । गांधी जी इसके लिए भी तैयार नहीं हुए । वे सुधार कानून के अनुरूप भारत की सरकार बनाने में रुचि लेने लगे ।

इस पर पण्डित मोतीलाल जी ने धमकी दे दी और गांधी जी को पदच्युत करने का षड्यन्त्र किया तो गांधी जी कान से पकड़े हुए बालक की भाँति पण्डित मोतीलाल जी के अनुरूप हो, सरकार बनाने में दूसरे लोगों से सहयोग छोड़, आन्दोलन के मार्ग पर चल पड़े ।

वह मार्ग क्या था ? इस बात का पता चलता है अक्टूबर मास १९२० में हुए कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में पारित प्रस्ताव से । टर्की ने प्रथम विश्व युद्ध में अंग्रेजों और मित्र राष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध लड़ा था । उस युद्ध में अंग्रेजों की विजय हुई तो यह स्वाभाविक ही था कि टर्की के तत्कालीन शासन से असन्तोष उत्पन्न हो । यह हुआ, और एक सैनिक अधिकारी कमाल पाशा ने शासन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया । टर्की का शासक जो इस्लाम का मुखिया भी माना जाता था, टर्की से भाग गया और टर्की में विद्रोहियों का अधिकार हो गया । यह कहा जाता था कि कमाल पाशा को अंग्रेजी सहायता मिल रही थी और हिन्दुस्तान के मुसलमान अंग्रेजों से नाराज थे ।

गांधी जी भारत में राजनीतिक सुधारों पर कार्य

करने के स्थान मुसलमानों के अंग्रेजों के विपरीत रोष से लाभ उठा, आन्दोलन में लग गये।

तितलियों के पीछे भागने वाले बालक की भांति गाँधी जी, यह भी भूल गए कि भारत में स्वराज्य और सुराज्य लाना है। वे खिलाफत के मसला को सुधारने के पीछे लग गए। न केवल स्वयं लगे, वरन् देश को भी अपने पीछे लगा बैठे। खिलाफत के मसला के प्रति सामान्य भारतवासियों की रुचि उत्पन्न करने के लिए उन्होंने पञ्जाब मार्शल ला के अधिकारियों को दण्ड दिलाने का मसला भी जोड़ दिया।

भारत के प्रायः सब नेता इस प्रस्ताव के विपरीत थे। विषय निर्धारिणी सभा में यह प्रस्ताव पारित नहीं हो सका। केवल पण्डित मोतीलाल इसके हक में थे, परन्तु गाँधी जी की सर्व साधारण में ख्याति के कारण खुले अधिवेशन में यह बात पारित हो गई कि यदि सरकार खिलाफत के विषय में हुए अन्याय का सुधार नहीं करती और मार्शल ला के अपराधी अफसरों को उचित दण्ड नहीं देती, तो देश-व्यापी आन्दोलन चलेगा।

इस आन्दोलन में स्वराज्य के विषय में एक शब्द भी नहीं था। यह कैसे हुआ कि भारत के राजनीतिक ढाँचे में नये सुधारों पर कार्य करते-करते गाँधी जी एक विदेशी के मसला पर अपना मार्ग भूल गए। खिलाफत एक मजहबी विषय था। उस मजहब का, जो विश्व भर में अपने पूर्व के व्यवहार से एक अति कटु स्मृति छोड़ चुका था और जिसके कारण हिन्दुस्तान में भी कम अत्याचार नहीं हुए थे। इस के साथ ही कलकत्ता के प्रस्ताव में हिन्दुस्तान की राजनीति के विषय में किसी प्रकार की माँग नहीं थी।

नये सुधारों के अनुसार देश भर में प्रान्तीय कौंसिलों के निर्वाचन होने वाले थे। उनमें भाग लेने से मना करने के लिए ही जल्दी जल्दी कलकत्ता में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन बुलाया गया था और सब नेताओं के विरोध करने पर भी सर्व साधारण के मनोद्गार उभार कर कौंसिल के लिए निर्वाचकों का बहिष्कार करा दिया गया।

१९२१-२२ के आन्दोलन में स्वराज्य प्राप्ति का उद्देश्य तो बाद में सम्मिलित किया गया। उस समय तक कौंसिलों के निर्वाचनों का बहिष्कार हो चुका था। कौंसिलों में अयोग्य, राष्ट्र विरोधी लोग सम्मिलित हो चुके थे।

गाँधी जी की इस कलाबाजी का मूल कारण गाँधीजी की विशेष मानसिक प्रवृत्ति, जिसे हम गाँधीवाद का दूसरा लक्षण कह रहे हैं, के कारण थी।

इस प्रवृत्ति का रूप यह है कि सबके साथ मिलकर कार्य करने का स्वभाव। समझौता और संधियाँ तो विरोधियों के साथ की जाती हैं, परन्तु विरोधियों से मिलकर सहयोग देकर कार्य नहीं किया जा सकता।

समझौते तथा संधि में कुछ शर्तें निश्चय होती हैं और उन शर्तों की परिधि में रहते हुए समझौता करने वालों को कार्य करना होता है। जब कोई पक्ष उन शर्तों का उल्लंघन करे तो दूसरा भी स्वतन्त्र हो जाता है।

गाँधी जी ने मुसलमानों से खिलाफत के विषय में संधि अथवा समझौता नहीं किया था। यह तो सहयोग था। यह सहयोग वे अफ्रीका में भी देते रहे थे और १९२० से हिन्दुस्तान में भी देने लगे थे।

सहयोग में सदैव बिना शर्त के आत्म-समर्पण होता है। यह उन लोगों से नहीं किया जा सकता, जिनके साथ न तो उद्देश्य समानता हो, न ही उद्देश्य प्राप्ति के उपायों पर सहमति।

इस्लाम एक अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन है। इसका उद्देश्य मुहम्मद साहब पर ईमान लाने वालों का विश्व भर में राज्य स्थापित करना है। इस मजहब के मजहबी संगठन में सहयोग देने के लिए तैयार होना भारत में भारतीयों के स्वराज्य प्राप्ति के विचार का विरोधी था। गाँधी जी ने पण्डित मोतीलाल जी की राय पर यह स्वीकार किया। न केवल स्वीकार किया, वरन् अपने, जनता में प्रभाव के बल पर नेताओं की विचारित मत के विरुद्ध कार्य करने पर तैयार कर लिया।

प्रायः हिन्दू, विशेष रूप में भारतीय विचार धारा से रहित और अंग्रेजी शिक्षा से विभूषित, लक्ष्यहीन हो जाने के कारण सुगमता से पथ-भ्रष्ट किए जा सकते हैं। यही गाँधी जी ने किया। १९२१ में नागपुर में कांग्रेस अधिवेशन के समय गाँधी जी से असहमत होने वालों के साथ यही हुआ। श्री सी० आर० दास के नेतृत्व में कलकत्ता

के प्रस्ताव का विरोध करने वाले एकत्रित हुए और गांधी जी के प्रस्ताव का विरोध करने के लिए सी० आर० दास को आगे कर बैठ गए। सी० आर० दास ने गांधी जी के सामने आत्म-समर्पण कर दिया और सब उनके पीछे लगने वाले देश हित को छोड़ गांधी जी के भुलावे में आ गए।

गांधी जी को इस मिथ्या मार्ग से क्या हानि हुई, इसका वर्णन गांधी जी के अनुयायी श्री जवाहर लाल नेहरू इस प्रकार करते हैं :—

Owing to the prominence given to the Khilaphat movement in 1921, a large number of Moulvies and Muslim religious leaders took a prominent part in the political struggle. They gave a definite religious tinge to the movement, and Muslims generally were greatly influenced by it. Many a Westernised Muslim, who was not of a particularly religious turn of mind, began to grow beard and otherwise conform to the tenets of orthodoxy. The influence and prestige of the Moulvies, which had been gradually declining owing to new ideas and a progressive Westernisation, began to grow again and dominate the Muslim Community. The Ali brothers, themselves of a religious turn of mind, helped in this process, and so did Gandhi ji, who paid the greatest regard to the Moulvies and the Moulanas.

Jawahar Lal Nehru—An Autobiography

(१९२१ में खिलाफत आन्दोलन को प्रधानता देने के कारण एक भारी संख्या में मौलवी और मुस्लिम मजहबी नेताओं ने राजनीतिक संघर्ष में मुख्य भाग लिया। उन्होंने आन्दोलन को एक स्पष्ट मजहबी रंग दे दिया और साधारण मुसलमानों पर इसका बहुत प्रभाव हुआ। बहुत से पश्चिम से प्रभावित मुसलमान, जिनके मन मजहबी नहीं थे, दाढ़ियां रखने लगे और दूसरे रुढ़िवाद का पालन करने लगे। मौलवियों की मान-प्रतिष्ठा, जो पश्चिमी विचारों के कारण धीरे-धीरे ह्रास को पहुँच रही थी, इस्लामी समुदाय में पुनः उन्नति करने लगी। अली भाई जो मजहबी विचार रखते थे, ने इस प्रक्रिया में सहायता दी और यही बात गांधी जी ने की। गांधी जी मुल्ला मौलानाओं का बहुत आदर करते थे।)

पण्डित जवाहर लाल गांधी जी के सहयोगी थे। इस कारण जो कुछ उन्होंने उक्त पंक्तियों में लिखा है, वह बहुत ही नियन्त्रित भाषा में लिखा है। वास्तव में इस मिथ्या आन्दोलन से देश की राजनीति को जो हानि हुई थी, वह इससे कई गुणा अधिक थी। यदि यह कहा जाये कि देश विभाजन का बीजारोपण इसी आन्दोलन ने डाला था, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

गांधीवाद का दूसरा लक्षण, जो हमने बताया है, वह है दूसरों से सदा सहयोग करते हुए चलना। हमने यह बताया है कि सहयोग भिन्न-भिन्न दिशाओं में जाने वालों से नहीं किया जा सकता। उनसे समझौता हो सकता है। समझौते में की गई शर्तों की परिधि में रह कर कार्य होना चाहिए। सहयोग की बात दूसरी है।

जब विरोधियों से सहयोग किया जाता है तो हठी विरोधी सहयोग करने वाले को बहा कर अपने साथ ही ले जाता है। परिणाम यह होता है कि भले ईमानदार आदमी हठी और दुष्टों के साथ बह जाते हैं।

गांधी जी बह गये पण्डित मोती लाल जी के साथ जवाहर लाल बह गये रूस के साथ, देश बह गया कांग्रेस के साथ और कांग्रेस बह गई मुसलमानों और ईसाइयों के साथ।

यह सब इसलिए कि देश में किसी का भी वैचारिक आधार नहीं। जब जहाज का लंगर टूट जाता है तो वह आंधी के साथ बहने लगता है। जिधर हवा का जोर हुआ, उधर ही वह बहता चला जाता है।

यही बात गांधी जी की थी और तत्पश्चात् जनता ने इसे गुण मान गांधीवाद में स्थान दे दिया। गांधी जी बिना हिन्दू शास्त्र पढ़े हिन्दू थे, बिना राष्ट्रीयता का तत्व

(शेष पृष्ठ ६ पर)

समाचार समीक्षा

पंजाब में संवैधानिक संकट

पंजाब की राजनीतिक अवस्था दिन-प्रतिदिन बिगड़ती जा रही है। इसकी चरम सीमा मार्च १८ को पहुँची। घटना का विवरण इस प्रकार है।

सात मार्च को पंजाब विधान सभा के स्पीकर ने सभा की बैठक दो मास के लिये स्थगित कर दी थी। इसमें बहाना यह बनाया गया था कि विपक्षी दलों के सदस्य गड़बड़ मचा रहे थे।

प्रथम अप्रैल से पूर्व बजट (वार्षिक आय-व्यय का चिट्ठा) पारित होना चाहिए था, और स्पीकर ने बिना बजट पारित किये अधिवेशन स्थगित कर दिया।

गवर्नर ने इस अधिवेशन को पुन: बुलाया। यह अधिवेशन १८ मार्च के लिये बुलाया गया। स्पीकर और सदस्य इसमें उपस्थित थे। प्रश्न उपस्थित हुआ कि क्या गवर्नर का अधिवेशन बुलाना न्यायसंगत है अथवा नहीं। विधान सभा में ढाई घंटा तक विवाद होता रहा और उसके अन्त में स्पीकर ने यह निर्णय दिया कि गर्वनर का अधिवेशन का अवसान ठीक है, परन्तु क्योंकि अवसान करने का अध्यादेश अभी गजट में छपा नहीं, इस कारण विधान सभा का अधिवेशन बुलाना अनियमित है। इस निर्णय को देकर स्पीकर ने कह दिया कि यह अधिवेशन अनियमित है। इतना कहकर वह सभा छोड़कर चला गया। यह कहा जाता है कि विधान सभा भवन को ताले लगा दिये गये। स्पीकर के जाने के उपरान्त लोग सीढ़ियाँ लगाकर भीतर घुस गये और पुलिस के संरक्षण में तथा डिप्टी स्पीकर की अध्यक्षता में बैठ बजट पारित कर दिया। जब बजट पारित किया जा रहा था, सदस्यों में मुक्का-मुक्की हो रही थी और डिप्टी स्पीकर के चारों ओर पुलिस वालों की चार कतारें उसकी रक्षा कर रही थीं।

नियम से बजट पर स्पीकर के हस्ताक्षर होने चाहिएँ, परन्तु स्पीकर कहता है कि १८ तारीख का अधिवेशन अनियमित था और बजट पास नहीं हुआ और वह उस दिन की कार्यवाही को पारित नहीं कह सकता।

यह संवैधानिक संकट इस कारण उत्पन्न हुआ है कि संविधान अनाड़ियों का बना हुआ है। बंगाल में भी यही बात हुई थी। बंगाल विधान सभा का अधिवेशन भी वहाँ के स्पीकर ने होने नहीं दिया था।

केन्द्र और राज्य के राजपाल समझ नहीं सके कि ऐसी स्थिति में करना क्या चाहिए और उन्होंने धींगा-

---

(सम्पादकीय का शेष)

जाने राष्ट्रवादी थे, बिना अर्थ शास्त्र का अध्ययन किए देश के अर्थ शास्त्री थे, बिना शरीर ज्ञान जाने वे डाक्टर थे। वे सब कुछ थे, परन्तु बिना किसी भी बात का ज्ञान प्राप्त किए।

जब मनुष्य आधार भूत सत्य को नहीं जानता तो वह उस पतंग की भाँति हो जाता है जो कट चुकी हो। वह हवा की दया पर बहती चली जाती है।

एक बार गाँधी जी लाहौर में अछूतोद्धार के लिए धन एकत्रित करने गए थे। अछूतों में काम करने वाली एक संस्था के प्रतिनिधि उस कोष में से, अपनी संस्था के लिए सहायता चाहते थे। महात्मा जी ने पूछा, "आप क्या प्रचार करते हैं अछूत बच्चों में?"

एक प्रतिनिधि ने बताया, "हम राम और कृष्ण की महिमा का गुण-गान करते हैं।"

गाँधी जी ने कहा, "पर मैं तो राम कृष्ण इत्यादि को मानता नहीं।"

"पर आप राम का नाम तो स्मरण करते हैं।"

"मेरा राम तो रोम-रोम में व्यापक परमात्मा है।"

"पर आप नित्य प्रात: गाते हैं, "रघुपति राघव राजा राम पतित पावन सीताराम।"

महात्मा जी निरुत्तर हो गए और उन्होंने सभा के प्रतिनिधियों को कह दिया कि उनका समय समाप्त हो गया है।

ऐसे थे गाँधी जी और ऐसा है गाँधीवाद।

मस्ती से बजट पास कराने की आवश्यकता अनुभव की है।

प्रायः सब राज्यों की विधान सभाएँ किसी प्रकार का विचार-विनिमय का स्थान बनने की अपेक्षा कुश्ती के अखाड़े बन गये हैं। यद्यपि इस सब अव्यवस्था में दोषी को ढूँढ निकालना कठिन नहीं, इस पर भी हम खोज में समय व्यर्थ व्यय करने के स्थान यह बताना चाहते हैं कि भारत के संविधान सभा के सदस्य, सब के सब, प्रधान मंत्री से लेकर एक साधारण सदस्य तक, अनाड़ी थे और उन्होंने इस विषय में किसी जानकार से राय नहीं की। पं० जवाहर लाल अपने को सर्वज्ञ और सर्वगुण-सम्पन्न मानते थे और संविधान सभा के कानूनी मशीर डाक्टर अम्बेदकर सर्वथा अदूरदर्शी थे। जब तक कांग्रेस संसद में और राज्य सभाओं में पूर्ण बल में रही, तब तक बहुमत के बल पर कार्य चलता रहा; युक्ति तथा विधान के बल और आधार पर नहीं, वरं बहुमत की धींगामस्ती से सब काम चलते जा रहे थे। कांग्रेस के महापंडितों और श्री जवाहर लाल जी को यह विचार तक नहीं आया कि कांग्रेस के अतिरिक्त कोई अन्य दल भी सत्ता प्राप्त कर सकेगा अथवा जवाहर लाल जी सदा जीवित और प्रधानमंत्री नहीं भी रह सकते।

हम तो समझते हैं कि केन्द्रीय सरकार अभी तक यह नहीं समझी कि केन्द्र में भी इन्दिरा गांधी के अतिरिक्त कोई प्रधान मंत्री बन सकता है और जब कोई और शक्ति सम्पन्न हुआ तो वह भी उनकी पगड़ियाँ उछाल सकेगा और उनके सिर फोड़ सकेगा। परमात्मा न करे कि यदि कम्यूनिस्ट सत्ता प्राप्त कर गये तो वे अपने विरोधियों को गोली से उड़ा देंगे।

गिल्ल साहब के मंत्रीमंडल को एक क्षण के लिए भी सत्ता नहीं देनी चाहिए थी। अल्पमतवालों को मंत्री-मंडल बनाने की स्वीकृति देनी जनता के साथ अति अन्याय था। संविधान में कोई ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए था कि जब एक से अधिक दल मिल कर मंत्री-मंडल बनायें तो उनमें हुए समझौते की एक प्रति गवर्नर के पास हो और उसे जनता को विश्वास में लेकर जनता को बताते रहना चाहिए कि समझौता क्यों टूटा है।

पंजाब के विषय में तो संविधान की त्रुटियाँ कष्ट दे ही रही हैं, साथ ही कांग्रेस दल की अनीति भी इसमें उत्तरदायी है। पंजाब का दुर्भाग्य यह है कि पंजाब में हिन्दू साठ प्रतिशत थे और सिख थे केवल चालीस प्रतिशत। श्री जवाहर लाल जी स्वभाव से हिन्दुओं के विरोधी थे। पंजाब के हिन्दुओं ने एक अपराध यह किया था कि वे श्री नेहरू तथा म० गांधी की राय के विपरीत पाकिस्तान में ही मरने और अपमानित होने अथवा मुसलमान बनने के लिए रह नहीं गये। इस कारण श्री नेहरू और कांग्रेस ने इनका मलियामेट करने के लिए अकालियों को इनके मुकाबिले पर खड़ा कर दिया। पहले भाषा और शिक्षा के विषय में सच्चर फार्मूला बना और तत्पश्चात् पंजाब विभाजन हुआ। इस पर भी कांग्रेस को शान्ति नहीं मिली। किसी प्रकार से हिन्दुओं और सिखों में शान्ति के लक्षण दिखाई देने लगे थे। अब कांग्रेस ने इस समझौते को टिके रहने में बाधाएँ डालनी आरम्भ कर दीं। गिल्ल साहब के पाँच-छः सहयोगियों को मंत्री मंडल बनाने में सहयोग देने लगी। परिणाम यह हुआ कि हिन्दू और सिखों में बन रहे अच्छे सम्बन्धों को बिगाड़ने का प्रयास आरम्भ हो गया।

मजेदार बात यह है कि पंजाब क्या और देश के अन्य भाग क्या, सभी स्थानों पर हिन्दू मतों के आश्रय कांग्रेस सत्ताधारी है।

भारत में दल किसी सिद्धान्त के आधार पर बने हुए नहीं हैं। प्रत्येक दल में खिचड़ी है और प्रत्येक के सिद्धान्तों में मतभेद है। दलों में दल हैं, और नेताओं को बनाए रखने के लिए दल हैं। घोर कम्युनिस्ट से लेकर एक पूजा पाठ करने वाला हिन्दू कांग्रेस में है। इसी प्रकार जनसंघ में और अन्य दलों में हैं। दो-दो कम्युनिस्ट दल हैं, कई समाजवादी दल हैं। हिन्दू महासभा में भी नेतागीरी के आधार पर दल हैं। अतएव भारत की राजनीति में इतना भ्रम फैला हुआ है कि कोई नहीं जानता कि वह किसी भी दल को मत देता हुआ किस पक्ष को मत दे रहा है। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हो रहा है कि निर्वाचनों के समय हिन्दू महा सभा से लेकर वाम पंथी साम्यवादी तक सब हिन्दू हैं, सब राष्ट्रवादी हैं, समाजवादी हैं, सब व्यक्ति की महिमा के गुण गाने वाले हैं, सब सरमायादार हैं और सब कम्युनिस्ट हैं। सब गांधी भक्त हैं, सब नेहरू जी के प्रशंसक

हैं और जाट, अहीर, गूजर, ब्राह्मण, ठाकुर और सब कुछ हैं।

कांग्रेसियों में एक बात सांझी है। वह यह कि वे यद्यपि नाम मात्र के लिए गांधी और नेहरू के नाम लेते हैं, इसी कारण वे निर्वाचन जीत जाते हैं। कोई कुछ भी विचार रख सकता है, अथवा कोई किसी प्रकार का भी स्वार्थ रख सकता है, यदि वह जवाहर लाल तथा उसके परिवार की माला जप दे, तो वह कांग्रेसी है और वह चाहे किसी प्रकार निर्वाचन जीते, वह कांग्रेस के लुटेरों में सम्मिलित हो सकता है और अपने हाथ रंग सकता है। बस कांग्रेस के नेताओं का अपनी हिन्दू विरोधी नीति चलाने का अवसर मिलता रहता है।

यह गड़बड़ है। इसका फल पंजाब में प्रकट हुआ है। हमारा विचार है कि वहां भी राष्ट्रपति शासन होगा, परन्तु क्या वह बीमारी की चिकित्सा होगी? हमारा विचार है कि बंगाल, बिहार, पंजाब और उत्तर प्रदेश, अभिप्राय यह है कि कहीं भी समस्या सुलझेगी नहीं।

एक आधारभूत भूल हो रही है। हमारा संविधान गलत और दोषपूर्ण है। इस संविधान से गलत और मूढ़ लोग संसद और विधान सभाओं में आ गये हैं। संविधान ऐसा बन गया है। अब इसका संशोधन हो नहीं सकेगा। कम से कम संशोधन सुगम नहीं।

तो क्या किया जाए? सब से पहिले तो विचारों के आधार पर दल बनने चाहिएँ। संसार में दो प्रकार के ही विचार हैं। दैवी और आसुरी। एक बार जन संघ की कार्यकारिणी में यह विचार रखा गया था और यह आग्रह किया था कि जन संघ दैवी विचारों वाला दल बन जाये। परन्तु यह बात हँसी में उड़ा दी गई थी।

दैवी वे हैं, जो ईश्वर पर विश्वास रखते हैं, धर्म पर आरूढ़ रहते हैं, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को पवित्र मानते हैं, देश और जाति के कल्याण को सर्वोपरि मानते हैं, अभिमान को छोड़कर सेवा भाव में रत रहते हैं। जनसंघ के लोगों को ऐसा दैवी विचार ठीक प्रतीत नहीं हुए। वे समाजवाद के हिरण्यमय पात्र से ढँपी गंदगी को स्वीकार करने के लिए दैवी विचारों को स्वीकार नहीं कर सके।

देश में जब तक कोई दैवी विचारों वाला दल बन नहीं जाता, वह जनता को भी अपने साथ नहीं ले सकेगा और स्वार्थी, ठगों और धूर्तों का बोल बाला होता रहेगा। कांग्रेस जायेगी तो कम्युनिस्ट आयेंगे। और समाजवाद की मृग-मरीचिका में पड़ा यह देश दुःख और कष्ट भोगता रहेगा।

○

(पृष्ठ ६ का शेष)

यह सम्पूर्ण जगत् चर और अचर हो गया। संक्षेप और साधारण भाषा में कहें तो यह इस प्रकार है—

मूल प्रकृति के प्रत्येक कण (अणु) में तीन गुण सत्व, रजस् और तमस् विद्यमान हैं। ये सन्तुलित अवस्था में हैं। इनका परस्पर आश्रय भंग होता है परमात्मा की इच्छा से। असन्तुलित अवस्था का नाम "आपः" है। एक अति विशाल और विस्तृत क्षेत्र में यह बनता है। इसमें गति उत्पन्न होती है। तब यह महत् कहलाता है। महत् में प्रकृति के दोनों सत् और असत् रूप विद्यमान होते हैं। यह गतिशील महत् का अण्डा, ब्रह्माण्ड, हिरण्यगर्भ भी कहाते हैं। अब इसमें परमात्मा की नेतृत्व शक्ति (ब्रह्मा) उपस्थित हो परिवर्तन आरम्भ कर देती है।

परिवर्तनों में पहले तीन अहंकार बनते हैं। वैकारी, तेजस् और भूतादि। वैकारी अहंकार में सात्विक गुण प्रधान होता है और अन्य दो गुण गौण। तेजस् अहंकार के अणु में तेज गुण अधिक और अन्य गौण होते हैं। भूतादि अहंकार में तमस् गुण का आधिक्य और अन्य का गौणत्व होता है। अहंकारों में प्रगति की भान्ति अणु होते हैं। प्रत्येक अणु में तीनों गुण होते हैं। अन्तर यह है कि अहंकारों के अणुओं में एक गुण विशेष (प्रभावी) होता है और शेष गौण (प्रभावहीन)।

परमाणु तो सत्त्व, रजस् और तमस् हैं और मूल प्रकृति में तथा अहंकारों में अणु होते हैं। इनमें परमाणुओं का संयोग होता है।

अहंकारों से व्यक्त चराचर जगत् बनता है। वैकारी अहंकार और तेजस् अहंकार के संयोग से दस इन्द्रियां और मन बनते हैं। सात्विक और भूतादि अहंकार के संयोग से पंचमहाभूत बनते हैं। पंच महाभूतों के विषय शब्द, रूप, रस, गंध उन तन्मात्राओं से बनते हैं जो अहंकारों के द्वितीय संयोग से निकलती हैं। पूर्ण जगत् इनसे ही बना है।

(क्रमशः)

इतिहास में भारतीय परम्परायें

श्री गुरुदत्त

इसी श्रृंखला के पहले अंशों में मैं बता चुका हूँ कि—(१) ब्रह्माण्ड असीम है। कम से कम इसकी सीमाओं को हम नहीं जानते ; (२) ब्रह्माण्ड में पदार्थ कौन-कौन से हैं और उनके गुण क्या हैं ; (३) जगत् की रचना क्यों हुई ; (४) रचना करने वाला कौन है ; (५) रचना का आरम्भ कैसे हुआ ; (६) सत्त्व, रजस् और तमस् गुणों का सन्तुलन टूटने पर प्रकृति का प्रथम रूप "आपाः" हुआ, जिसको कपिल मुनि महत् का नाम देते हैं।

महत् का रूप, आकार और विस्तार :—

बृहदारण्यक उपनिषद् में सृष्टि उत्पत्ति के विषय में लिखा है :—

"...सोऽर्चन्नचरत्तस्यार्चत आपोऽजायन्तार्चते वँ मे कमभूदिति तदेवार्कस्यार्कत्वं..."

(१-२-१)

अर्थात्—उसने अर्चन किया। अर्चन का अर्थ है रचना की। 'उसने' से अभिप्राय है परमात्मा ने। इस रचना करने से आपाः उत्पन्न हुआ।

एक अन्य श्रुति में इस 'आपा' का स्वरूप वर्णन किया है। यह वर्णन उस काल का है जब प्रकृति के सत्त्व रजस् और तमस् गुणों का सन्तुलन टूटा। अर्थात् परमात्मा ने रचना आरम्भ की। यह काल उषा का काल माना है। अर्थात् ब्रह्म दिन का आरम्भ था। उस उषा काल में:—

उषा वा अश्वस्य मेध्यस्य शिरः। सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणो व्यात्तमग्निर्वैश्वानरः संवत्सर आत्माऽश्वस्य मेध्यस्य।

(बृ० उ० १-१-१)

यहाँ उषा का अभिप्राय ब्रह्म दिन का आरम्भ है। ब्रह्म दिन उस काल को कहते हैं जिस काल में चराचर जगत् बना रहता है। इस काल के विषय में महाभारत में लिखा है कि १२,००० दिव्य वर्षों की एक चतुर्युगी अर्थात् एक दिव्य युग होता है। एक सहस्र दिव्य युगों का एक ब्रह्म दिन होता है। अभिप्राय यह है कि एक सहस्र चतुर्युगियों का ब्रह्म दिन और इतने ही काल की रात्रि होती है। ब्रह्म दिन में जगत् बनता है, कार्य करता है और फिर ब्रह्म रात्रि के समय मूल प्रकृति में लीन हो जाता है। इसे भगवद्गीता में इस प्रकार लिखा है :—

सहस्र युगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः॥
अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके॥
भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे॥

भ० गी० ८- १७, १८, १९,

ब्रह्म दिन एक सहस्र चतुर्युगियों का होता है और इतनी बड़ी ही रात्रि है। ब्रह्म दिन में व्यक्त (इन्द्रियगोचर) जगत् उत्पन्न होता है और ब्रह्म रात्रि में अव्यक्त (इन्द्रिय अगोचर, मूल प्रकृति) में विलीन हो जाता है। इस प्रकार बार-बार यह बनता है और बार-बार यह विलीन होता है।)

यह जगत एक हिरण्यगर्भ (Nebula) का परिणाम है। ऐसे अनेक हिरण्यगर्भ ब्रह्माण्ड में बनते और बिगड़ते रहते हैं।

बृहदारण्यक उपनिषद् (१-१-१) में वर्णित उषा का ऊपर अर्थ बता दिया है। उसमें यह वृतान्त है कि उषा काल में अश्वमेध का शिर बना। अश्वमेध नाम है जगत् रूपी यज्ञ का। अभिप्राय है कि उषा काल (ब्रह्म दिन के आरम्भ) में जब जगत् रूपी यज्ञ का आरम्भ हुआ तो इसका शिर बना। शिर से हिरण्यगर्भ का अभिप्राय है। हिरण्यगर्भ ही जगत् का आरम्भ है। इस शिर में चक्षु बने। अर्थात् हिरण्यगर्भ में सूर्य समान कुछ प्रकाशमान केन्द्र बन गये। वायु बनी। वायु उसको कहते हैं, जिससे गति उत्पन्न होती है। अभिप्राय यह कि हिरण्यगर्भ में गति उत्पन्न हुई। वायु से प्राण (शक्ति) और फिर वैश्वानर अग्नि बनी।

यह वह अवस्था है जब "आपाः" बन कर उसमें परिवर्तन होने आरम्भ हो गये थे। इस आपाः के स्वरूप के

विषय में आगे बताया है :—

अहर्वा अश्वं पुरस्तान्महिमान्वजायत तस्य पूर्वे समुद्रे योनी रात्रिरेनं पश्चान्महिमान्वजायत तस्यापरे समुद्र योनिरेतौ वा अश्वं महिमानावभितः सम्बभूवतु ः।

(बृ० उ० १। १। २)

अश्व (यज्ञारम्भ) से पूर्व दिन (ब्रह्मदिन) आरम्भ हो गया। इससे पूर्व का रूप समुद्र का सा है। उस समुद्र से पहले रात्रि ही थी। अश्व के ऊपर भी समुद्र था। पीछे भी और आगे भी समुद्र था। इस समुद्र का नाम महान् था...।

अभिप्राय यह कि "आपाः" अथवा महान् का स्वरूप समुद्र का सा था। इसमें हिरण्यगर्भ एक भंवर के समान था।

यह भंवर की भान्ति घूमता हुआ आपाः अर्थात् नैबुला (हिरण्यगर्भ) में, जो अण्डे के नाम से भी विख्यात है, ब्रह्म (परमात्मा) की कर्तृत्व शक्ति एक संवत्सर तक बैठी निर्माण-कार्य करती रही।

इस अण्डे में क्या कार्य होता रहा? इस विषय में गीता में इस प्रकार लिखा है—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥

भ० गी० ७। ४।

(आपा से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश (पंचमहाभूत) बने। इसी से मन, बुद्धि और अहंकार बने। प्रकृति के ये आठ रूप हैं।)

सुश्रुत में इसी बात को अधिक व्याख्या से बताया गया है :—

सर्वभूतानां कारणमकारणं सत्त्वरजस्तमोलक्षणमष्टरूपमखिलस्य जगत् संभवहेतुरव्यक्तं नाम तदेकं बहूनां क्षेत्रज्ञानामधिष्ठानं समुद्र इवोदकानां भावानाम्।

सब प्राणियों का और पूर्ण जगत् का कारण आठ रूप वाली सत्व, रजस् और तमस् लक्षणों वाली प्रकृति का कोई कारण नहीं। ऐसी मूल प्रकृति है। अभिप्राय यह कि :—

आदि प्रकृति से आपा बना। उससे प्रकृति के आठ रूप बने। गीता में तो उन रूपों का नाम ही बताया है—पंच महाभूत तथा मन, बुद्धि और अहंकार।

सुश्रुत इन आठ रूपों के बनने की प्रक्रिया का भी वर्णन करता है। लिखा है—

तस्मादव्यक्तान्महानुत्पद्यते तल्लिंग एव तल्लिंगाच्च महतस्तल्लिंग एवाहंकार उत्पद्यते स च त्रिविधो वैकारिकस्तैजसो भूतादिरिति॥

तत्र वैकारिकादहंकारात्तैजससहायात्तल्लक्षणान्येवैकादशेन्द्रियाण्युत्पद्यन्ते। तद्यथा श्रोत्रत्वक् चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाग्घस्तोपस्थपायुपादमनांसीति। तत्र पूर्वाणि पंच बुद्धीन्द्रियाणि इतराणि पंच कर्मेन्द्रियाणि उभयात्मकं मनः॥

सुश्रुत शरीर०-१। २,

अर्थात्—इस अव्यक्त प्रकृति से "महान्" उत्पन्न हुआ। महान् में तीनों लक्षण (सत्व, रजस् और तमस्) उपस्थित थे। इस पर भी महान् में इनका परस्पर का सहारा टूटा हुआ था। इनमें गति उत्पन्न हुई और उससे तीन अहंकार उत्पन्न हुए। इनके नाम हैं वैकारी अहंकार, तेजस् अहंकार और तमस् अहंकार।

आगे लिखा है कि वैकारी और तेजस् अहंकार के संयोग से ग्यारह इन्द्रियां बनीं। पांच ज्ञानेन्द्रियां (श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और घ्राण) और पांचों कर्मेन्द्रियां (वाक्, हाथ, पांव, उपस्थ और पायु) तथा ग्यारहवां मन उत्पन्न हुआ।

आगे लिखा है :—

भूतादेरपि तैजस सहायात् तल्लक्षणान्येव पंचतन्मात्राण्युत्पद्यन्ते। तद्यथा शब्दतन्मात्रं स्पर्शतन्मात्रं रूपतन्मात्रं रसतन्मात्रं गंधतन्मात्रमिति तेषां विशेषाः शब्दस्पर्श रूपरसगंधास्तेभ्यो भूतानि व्योमानिलानलजलोर्व्यः। एवमेषां तत्त्व चतुर्विंशतिर्व्याख्याता॥

सुश्रुत

भूतादि अहंकार और तेजस् अहंकार के संयोग से पंच तन्मात्रा उत्पन्न हुईं। उनके नाम हैं शब्द तन्मात्रा, स्पर्श तन्मात्रा, रूप तन्मात्रा, रस तन्मात्रा और गंध तन्मात्रा। उनके विशेष गुण के कारण पंच महाभूत बने।

ये चौबीस तत्व अर्थात् गुण हैं।

((शेष पृष्ठ ८ पर)

सुकरात के अन्तिम क्षण

श्री सचदेव

यूनान में दार्शनिकों की स्मरणीय श्रृंखला में एक परम पावन मणि सुकरात हुआ है। इसका जीवन काल लगभग ४०० ई० पू० था।

उस समय यूनान में एक प्रकार का गणतन्त्र राज्य था। इस गणतन्त्र राज्य में यूनान के देवी-देवताओं पर श्रद्धा और निष्ठा अति प्रबल थी। गणतन्त्र में अधिकारी उच्च परिवारों के प्रतिनिधि ही होते थे, परन्तु उन दिनों उच्च का अर्थ धनी-मानी नहीं था। उच्च से अभिप्राय था प्राचीन परम्परागत परिवार वाले। ये 'नोबल' कहलाते थे। साधारण जनता तो कामो व मजदूर श्रेणी में सम्मिलित थी। इनमें दास भी थे।

सुकरात एक साधारण आर्थिक स्थिति का व्यक्ति था। इसका घर कुछ अधिक सुखमय स्थान नहीं था। सुकरात की पत्नी 'जैन्थिप्पे' अपने पति से सन्तुष्ट नहीं थी। सुकरात ने उसकी सुख-सुविधा की ओर कभी ध्यान नहीं दिया। इस पर भी इसकी पत्नी सुकरात से बहुत प्रेम करती थी और उसे अपने पति के मरने पर भारी शोक हुआ था। मृत्यु के समय सुकरात की आयु तिहत्तर वर्ष की थी।

सुकरात में युवकों के लिये एक विशेष आकर्षण था और ऐथन के युवक उसको घेरे रहते थे। प्रातः से सायं वह बाजार में युवकों से बातें करता देखा जाता था। इन युवकों में अनेक विचारों, पारिवारिक परिस्थितियों और स्थानों के और भिन्न-भिन्न शिक्षा स्तर के युवक होते थे। सुकरात का बात-चीत का ढंग ऐसा होता था कि प्रत्येक उसमें रस और ज्ञान पाता था।

सुकरात के चारों ओर एकत्रित होने वाले युवकों में कई, पीछे जाकर विख्यात दार्शनिक हुए हैं। इनमें प्लैटो, ऐलसी, बिघाडस, ऐन्टिस्थीनस, ऐरिस्टियस प्रमुख थे।

सुकरात उस समय के 'एथन' के प्रजातन्त्र का एक अति व्यंगात्मक और कटु समालोचक था। लोग सुनते थे और उसकी सच्चाई को अनुभव करते थे और अन्त में यही उसके प्राण-दण्ड का कारण हुआ। उसके विरुद्ध यह आरोप था कि वह एथन के युवकों में राज्य और देश के मजहब के विपरीत विद्रोह उत्पन्न करता है।

लोग उसको पसन्द करते थे और उससे प्यार करते थे। यह इस कारण कि वह मानवोचित गुणों से युक्त होने के साथ-साथ दार्शनिक भी था। एक महान् विद्वान होने पर भी वह अति नम्र और विनीत स्वभाव रखता था। उसने कभी दावा नहीं किया कि वह बहुत ज्ञानवान है। वह सदा ज्ञान की खोज में दिखाई देता था। यह कहा जाता है कि 'डेल्फी' के प्रवक्ता ने इसे यूनान का सबसे अधिक बुद्धिमान व्यक्ति घोषित किया था। यह इस कारण कि सुकरात मानता था कि मनुष्य (Agnostic) सीमित ज्ञान का स्वामी है। उसका प्रायः यह कहना था :

One thing only I know, and that is that I know nothing.

(मैं केवल एक बात जानता हूँ। वह यह कि मैं कुछ नहीं जानता।)

दर्शन शास्त्र का आरम्भ ही वहाँ से होता है, जहाँ मनुष्य अपने विचारों और विश्वासों पर सन्देह करने लगता है। संदेह के निवारण के कई उपाय वह प्रयोग करता है; परन्तु एक दार्शनिक का सबसे प्रबल साधन उसकी निर्मल और तीव्र बुद्धि होती है। सन्देह से वह आरम्भ करता है और सत्य की ओर अग्रसर होता है, परन्तु सीमित सामर्थ्य रखने के कारण उसकी पहुंच पूर्ण सत्यता तक नहीं हो पाती।

सुकरात के पहले भी यूनान में कई ख्याति प्राप्त दार्शनिक हो चुके थे, परन्तु उनकी पूर्ण खोज बाहरी भौतिक (व्यक्त) जगत् तक ही सीमित थी। सुकरात इस 'व्यक्त' को फोड़ कर इसके भीतर झांकने का यत्न करता था। उसका यह कथन था :

There is no real philosophy until the mind turns round and examines it-self. *Gnothi seanton* (know thyself.)

(सत्य दर्शन तब तक नहीं होता जब तक मन को

को घुमाकर अपनी परीक्षा आरम्भ न करो। अपने को जानो।)

सुकरात ने दो अति कठिन समस्याओं पर विचार व्यक्त किये हैं। एक समस्या थी नेकी (धर्म) क्या है? और दूसरी थी, सर्वोतम राज्य किसे कहते हैं? ये दोनों समस्यायें उस काल के एथन के युवकों के मन की थीं। पूर्व के कोरे तार्किकों (Sophists) ने वहां के प्राचीन देवी-देवताओं में निष्ठा और श्रद्धा का नाश कर रखा था। और राज्य के विषय में सुकरात कहता था :

And for the state, what could have been more ridiculous than this mobled, passion ridden democracy, the government by a debating society, the precipitate selection and dismissal and execution of generals, this unchoice of choice of simple farmers and tradesmen in alphabatical rotation as members of the supreme court of the land?

(राज्य के विषय में? उस राज्य से अधिक बेहूदा और क्या हो सकता है जो जोश में आई भीड़ से बनाया प्रजातन्त्रात्मक है। यह राज्य एक debating club (बहस करने वालों का अड्डा) जिसमें एकदम निर्वाचन और फिर भंग करना तथा सेनाधिकारियों को फाँसी चढ़ाना होता है। सरल चित्त किसानों और व्यापारियों की बिना विचार किए निर्वाचित, वर्णमाला की भांति एक के उपरांत दूसरी चलने वाली। यह है सर्वाधिकार सम्पन्न संसद (Soveriegn parliament)।

दोनों समस्याओं के विषय में सुकरात के विचार उसे मृत्यु-दण्ड दिलाने वाले हुए थे। वह पार्थव देवी-देवताओं को छोड़ अन्तरात्मा में नेकी और सच्चाई ढूंढने का यत्न कर रहा था और उस काल के गणतन्त्र का घोर निन्दक था।

उस पर आरोप लगाये गये। उसने न्यायाधीशों के सामने उनको स्वीकार किया और उसे मृत्यु-दण्ड सुना दिया गया। सुकरात ने अत्यन्त शान्ति से मृत्यु-दण्ड सुना।

वह क्षमा माँग कर छूट सकता था। उस समय शासन इतना भष्टाचारी था कि थोड़ी सी रिश्वत देकर वह छूट सकता था, परन्तु उसने विचार स्वतन्त्रता की वेदी पर निछावर हो जाना ही ठीक समझा।

मरने से पूर्व जब उसके मित्रों ने शोक प्रकट किया तो उसने कहा :—

"शोक क्यों करते हो? प्रसन्न रहो। तुम तो केवल मेरे शरीर को ही दफना रहे हो।"

प्लेटो ने सुकरात के इन शब्दों को One of the great passages of world's literature (विश्व साहित्य की एक महान रचना) का नाम दिया है।

भगवान् कृष्ण ने तो इससे बहुत पहले कह रखा था—

'अशोच्यानन्वशोचस्त्वं' और 'अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।'

इस महापुरुष के अन्त समय का वर्णन, प्लेटो ने जो उस समय उसके समीप ही था, इस प्रकार किया है—

सुकरात उठा और स्नान करने गया। क्रिटो ने हम सब को बाहर ठहरने को कहा। हम परस्पर बातें करते हुए ठहरे रहे। हम सब उस महान् शोकमय वातावरण से प्रभावित थे। हम सब उसका पिता समान आदर करते थे और समझ रहे थे कि हम यतीम होने जा रहे हैं। उसे स्नान करने में समय लगा और सायंकाल समीप आ गई। वह आया और हमारे समीप बैठ गया। अभी कुछ बात नहीं हो पायी थी कि जेल का दारोगा आया और बोला—

'सुकरात! मैं जानता हूँ कि तुम उन सब से, जो कभी यहाँ (बन्दीगृह में) आये हैं, अधिक भले, विनम्र और श्रेष्ठ हो। मैं उनकी नीयत के विषय में कुछ नहीं कह रहा, जो मुझे, जब मैं उनको पीने को यह विष देता हूँ, गालियाँ देते हैं और हो-हल्ला करते हैं। मैं समझता हूँ कि तुम मुझ से नाराज नहीं हो सकते। क्योंकि इस कार्य में मैं दोषी नहीं हूँ। ये दूसरे हैं।

अतः अन्तिम नमस्कार। धैर्य से सहन करो, जो होना है होता ही है। तुम मेरा अभिप्राय समझते हो?"

सुकरात ने उसके मुख पर देखा और कहा, "मेरी शुभ कामना तुम्हारे साथ है। मैं तुम्हारा आदेश पालन

करूँगा।" और तब वह हमारी ओर घूम कर बोला, "कितना मजेदार है यह आदमी !"

सुकरात ने उसे कहा, "विष ले आओ।" क्रिटो ने कहा, "मास्टर ! अभी तो सूर्य पहाड़ियों के ऊपर है। कुछ दूसरे लोग तो रात देर तक पीने से इन्कार करते रहते हैं।"

उसने कहा, "हाँ ; वे बेचारे भी ठीक ही करते हैं। वे समझते हैं कि यहाँ कुछ देर और रहकर अपना हित कर रहे हैं। मैं तो ऐसा मानता नहीं। मुझे तो इस विचार पर ही हँसी आती है। जो समाप्त हो गया, उसे कुछ देर तक और यहाँ रख छोड़ने में क्या लाभ हो सकता है ? इस कारण मुझे चलने दो।"

क्रिटो ने सेवक को संकेत किया और एक सेवक विष एक प्याले में ले आया। बन्दीगृह का अधिकारी साथ था। सुकरात ने उससे पूछा, 'मेरे मित्र ! बताओ, मैं कैसे करूं ? तुमको इसका अनुभव है ?"

अधिकारी ने बताया, "इसे पी लीजिए और फिर तब तक टहलते रहिए, जब तक आपकी टाँगें भारी नहीं हो जातीं। तब लेट जाना और विष अपना काम करेगा।"

अधिकारी ने विष सुकरात के हाथ में दे दिया। सुकरात ने अधिकारी की ओर वैसे ही देखा जैसे उसे देखने का अभ्यास था और बिना हिचकिचाहट अथवा भय के उसने विष पी लिया। पीते समय उसका हाथ वैसे ही स्थिर था, जैसे भोजन करते समय होता था।

पीने से पूर्व सुकरात ने पूछा था, "क्या इसमें मैं कुछ अपने देवता को चढ़ा सकता हूं ?"

अधिकारी ने कहा, "जितनी आपके लिए आवश्यक है, उतनी ही तैयार की गई है।"

"इस पर भी मुझे अपने देवता से प्रार्थना करनी चाहिए जिससे मेरी इस यात्रा में वह मेरा सहायक हो सके।"

अभी तक हम सब (प्लेटो व उसके साथी) अपने को नियन्त्रण में रखे हुए थे, परन्तु उसे विष पीते देख हम और अधिक सहन नहीं कर सके। बहुत यत्न करने पर भी मैं अपने आँसू रोक नहीं पा रहा था। मैंने अपने मुख पर हाथ दे लिया और भीतर ही भीतर रोता रहा। क्रिटो भी अपने को काबू में नहीं रख सका। वह उठा और उस कोठरी से बाहर निकल गया। मैं भी उसके पीछे चला। इस पर ऐपोलोडोरस जो पहले ही रो रहा था, ऊँचा-ऊँचा रोने लगा। उसके मुख से जोर की चीख निकल गई। इससे तो हम सब भीरुओं की भाँति रोने लगे। इस पर सुकरात ने कहा, "यह क्या चीख पुकार है ? मैंने औरतों को इसी कारण भेज दिया था, जिससे मरने वाला शान्ति से मरे। चुप हो जाओ और धैर्य धरो।"

हम इस पर बहुत लज्जा अनुभव करने लगे। हम सब चुप कर गये। वह उठा और कमरे में ही टहलने लगा। जब उसने टाँगें लड़खड़ाती देखीं तो वह पीठ के बल लेट गया।

वह सेवक, जिसने उसे विष दिया था, उसको निरन्तर देख रहा था। उसने अब उसके पाँव पर देखा। कुछ समय उपरान्त उसने पांव को दबाया और पूछा, "अनुभव करते हो ?"

"नहीं।" सुकरात का उत्तर था। पीछे उस सेवक ने उसकी टाँगें और फिर शरीर के ऊपर के भाग को देखा। वह संज्ञाशून्य हो रहा था। उसका शरीर अकड़ता जाता था। सुकरात ने स्वयं कहा, "जब विष हृदय तक पहुँच जायेगी तब अन्त होगा।"

उसके अन्तिम शब्द थे, "क्रिटो! 'ऐसक्लिपस' को मैंने एक मुर्गा देना है। मेरा यह ऋण चुका देना।"

"चुका दिया जायेगा।" क्रिटो ने कहा और उसका सिर लुढ़क गया। यह अन्त था।

(पृष्ठ २१ का शेष)

जैसे जन प्रिय नेताओं के नाम पर कभी भी मुद्रा का प्रचलन नहीं हुआ है। परन्तु हिन्दुस्तान का स्वार्थी कांग्रेसी शासन नेहरू और गांधी के नाम से मुद्राओं का प्रचलन कर देश के साथ, गणतन्त्र के नाम पर विश्वासघात कर रहा है।

अतः देश की जनता को यह भली भाँति समझ लेना चाहिए कि—जिस राष्ट्रीय झण्डे को वह सम्मान के साथ देखती है यथार्थ में वह राष्ट्रीय झण्डे की अपेक्षा कांग्रेस का झण्डा अधिक है जो गीत वह 'राष्ट्रीय-गान' के रूप में गाती है, वह राष्ट्रीय गान के रूप में ग्रहण-योग्य नहीं है तथा राष्ट्र के हित के भी अनुकूल नहीं है; जो दिन 'शहीद-दिवस' के रूप में वह मनाती है यथार्थ में वह 'शहीद-दिवस' है ही नहीं; जो मुद्रा नेहरू के नाम पर बनकर उसके हाथों में आ रही है वह संवैधानिक नहीं है।

प्राचीन आर्यों का भूला इतिहास

श्री ज्वाला प्रसाद सिंह

ऋग्वेद आर्यों की प्राचीनतम पुस्तक है, ऐसा सभी मानते हैं। आर्यों के प्राचीन इतिहास की जो सामग्री इस में मिल सकती है वह दूसरी जगह से प्राप्त करना असम्भव है। परन्तु इतिहासज्ञ विद्वान इसकी पूर्णतया उपेक्षा करते हैं अथवा इसके सूक्तों के अनेक प्रकार के अर्थ करके विषय को सुलझाने के बदले अधिक जटिल बना देते हैं। आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक विविध अर्थ करके सूक्तकार के यथार्थभाव को एक भंवर जाल में डुबा देते हैं।

पहले तो पाश्चात्य विद्वानों ने निश्चय किया कि आर्य लोग भारत में बाहर से आये। कहां से आये इस पर अनेक मत रहे। दक्षिण रूस, पश्चिम जर्मनी, मेसोपुटामिया, कश्यप सागर के क्षेत्र, ईरान, तिब्बत इन का जन्म स्थान भटकता फिरा। भारतीय विद्वान भी यही मत मानने लगे कि आर्य बाहर से आये। भारत में आकर आर्यों का भारत के निवासी ड्रविडियन लोगों से संघर्ष हुआ और आर्यों ने उनको दक्षिण की ओर धकेल दिया और इसका प्रमाण भी ऋग्वेद में खोज निकाला गया। ऋग्वेद में एक वृत्तान्त इन्द्र और वृत्र के युद्ध का है। इसका अर्थ निकला कि इन्द्र आर्यों का सेनापति था। उसने भारत के मूल निवासी लोगों को मारकर यहां आर्यों को स्थापित किया। वृत्र उन मूल निवासियों का अधिपति था। कदाचित् यही लोग ड्रविडियन थे। ड्रविडियन भाषा भाषी ब्रहुई लोग अब भी बिलोचिस्तान में मिलते हैं। पुरातत्व वेत्ताओं ने मोहञ्जोदाड़ो और हड़प्पा की खुदाई करके इसको और प्रमाणित कर दिया। मोहञ्जोदाड़ो में बहुत से स्त्री-पुरुष और बच्चों के लगभग एक समय ही मारे गये कंकाल मिले, यह कार्य इन्द्र द्वारा संचालित बर्बर आर्य सैनिकों का ही था। हड़प्पा के लोग ड्रविडियन ही थे। हड़प्पा की सभ्यता आर्यों से पूर्व ही विकसित हो चुकी थी और आर्यों ने ही उसे नष्ट किया।

यह मत अब तक चलता रहा और हमारे विद्यालयों में अभी तक पढ़ाया जा रहा है। परन्तु अब एक नया मत आरम्भ हुआ है। पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार "आर्य" कोई जाति थी ही नहीं। काकेशायड लोगों का एक समूह भारत में पश्चिम से खेबर के दर्रे से आया और उसी को लोग आर्य कहने लगे। भारतीय विद्वान भी अब सहमत हो चले हैं। उन्होंने भी एक नया तर्क इसके समर्थन में उपस्थित कर दिया। आर्य का अर्थ है सज्जन पुरुष। यह कोई जाति का नाम नहीं है। जिस जाति को किसी समय संसार की मुख्य जाति समझा जाता था, उसकी अब ऐसी अनिश्चित अवस्था है!

इन विद्वानों से कोई पूछे कि उन "सज्जनों" (आर्यों) की जाति का नाम क्या था, तो कोई उत्तर नहीं मिलेगा। यदि कोई कहे कि "भारतीय" था तो उसका अर्थ भी तो भारत में रहने वाला होगा। फिर वह जाति का नाम कैसे हुआ? यथार्थ बात यह है कि ऋग्वेद की दुहाई लोग देते हैं परन्तु उसको पढ़ते नहीं।

ऋग्वेद में इन्द्र का युद्ध दस्यु लोगों से हुआ। वृत्र दस्यु लोगों का राजा था। यह दस्यु "इलीविश" अर्थात कन्दराओं में रहने वाले थे (देखिये मंडल १ सूक्त ३३ ऋचा १२)। ये लोग 'अनासो' अर्थात नासारहित अथवा चपटी नाक वाले थे (देखिये मंडल ५, सूक्त २९, ऋचा १०) और 'सिसिप्र' अर्थात ठोडी रहित' अथवा चपटे मुख वाले थे। (देखिये मंडल ५ सूक्त ४५ ऋचा ६) यह लक्षण तो आदिम पत्थर युग के लोगों के हैं। ड्रविडियन या हड़प्पा के लोग तो बहुत सभ्य कहे जाते हैं। वह भला इन लक्षणों वाले कैसे हो सकते हैं, अस्तु आर्यों का बाहर से आकर आक्रमण कर के मूल निवासियों को दक्षिण की ओर खदेड़ना कोरी मनगढ़न्त कल्पना है। वृत्र की कथा का क्या रहस्य है और आर्य जाति एक विशिष्ट जाति थी यह हम आगे बतायेंगे।

यहां एक नवीनतम मत का भी उल्लेख कर दें। कुछ विद्वान् (?) कहने लगे हैं कि आर्य, दस्यु व दास सब यथार्थ में एक ही जाति के थे। जो सज्जन लोग थे उनको आर्य कहते थे और जो लुटेरे थे उनको दस्यु कहते थे।

वरन् वैसे एक प्रसिद्ध विद्वान् ने तो यहां तक लिख दिया है कि 'वृत्र' इन्द्र का ही भाई था और सिन्धु घाटी वाली आर्यों की नागरिक सभ्यता का अधिपति था, जबकि इन्द्र आर्यों के ग्रामीणजनों का सेनापति था। (देखिये डा० बुद्ध-प्रकाश कृत 'ऋग्वेद व सिन्धु घाटी की सभ्यता' प्रकाशक विश्वेश्वरानन्द वैदिक रिसर्च इंस्टीट्यूट, साधु आश्रम) इनके अनुसार वृत्र लुटेरा दस्यु न होकर इन्द्र से भी अधिक सभ्य था। परन्तु इस कथन के लिए ऋग्वेद में लेशमात्र भी कोई प्रमाण नहीं है। वृत्र को इन्द्र का भाई निरुक्त २-१६ के आधार पर कहा गया है। परन्तु निरुक्त ऋग्वेद नहीं है और मूल कथा तो ऋग्वेद की है। सिन्धु घाटी की सभ्यता को ऋग्वेद की सभ्यता की चरम उन्नति रूप नागरिक सभ्यता इसलिए कहा गया है कि ऋग्वेद की कुछ बातें सिन्धु घाटी की रिवाजों में मिलती हैं। यह तो ऋग्वेद की सभ्यता के समय पाकर प्रसार से भी हो सकता है। परन्तु वृत्र तो उससे पहले ही मर चुका था। यह सब गोलमाल ऋग्वेद की उपेक्षा का ही परिणाम है। कुछ लोग कहते हैं कि आर्य और दास लोग सहयोगी थे। इसका अर्थ यह नहीं है कि 'दास' आर्य ही थे।' आर्यों से प्रभावित हो वे आर्य सभ्यता में मिल भी गये हों तो भी उनको आरम्भ से ही आर्य जाति नहीं कहा जा सकता। हम आगे देखेंगे कि ऋग्वेद में अनेक सूक्तों में आर्यों को दस्यु और दास लोगों से भिन्न कहा गया है और आर्य शब्द का जातिवाचक रूप में प्रयोग किया गया है।

२

वृत्र की कथा

ऋग्वेद में दी हुई वृत्र की कथा पौराणिक इन्द्र-वृत्र युद्ध से सर्वथा भिन्न है। ऋग्वेद की कथा बड़े महत्व की है। उसकी विशेषता व्याख्याकारों ने अभी तक भी नहीं पहचानी। ऋग्वेद के पहले मण्डल का ३२वां सूक्त कहता है :—

मैं बज्रधारी इन्द्र के पराक्रम के उस महान् कार्य का वर्णन करता हूँ जो उसने सबसे पहले किया था। इन्द्र ने अजदहे को मारा और पहाड़ों को तोड़ कर पहाड़ी नदियों को बाहर बहने का रास्ता बनाया ॥१॥

त्वष्टा के बनाये हुए घोर गर्जन करने वाले वज्र से इन्द्र ने पहाड़ पर अजदहे को मार दिया और बन्द पानी को प्रवाहित कर दिया, जिससे रंभाती गायों के समान नदियां शब्द करती हुईं समुद्र की ओर बह चलीं ॥२॥

बलवान बैल के समान इन्द्र ने सोम को ग्रहण किया और तीन यज्ञों से संचित सोमरस पिया। फिर घोर शब्द कारी वज्र से अही लोगों में मुख्य अजदहे को मारा ॥३॥

हे इन्द्र, जब तुमने अजदहों में प्रथम को मार दिया और मायावियों की माया नष्ट करदी तब तुमने आकाश में उषा और सूर्य को प्रकाशित किया तो एक भी शत्रु तुम्हारा बचा नहीं रहा ॥४॥

इन्द्र ने अपने महान् प्राणघातक वज्र से वृत्रों में मुख्य वृत्र को मार डाला। तुमने कब वृक्षों के समान उनको काट डाला कि वृत्र पृथ्वी पर मर कर पड़ा था ॥५॥

महावेग वाले शत्रुनाशक बलवान इन्द्र को मूर्ख अभिमानी वृत्र ने चुनौती दी परन्तु वह इन्द्र के विनाशकारी कार्य से बच नहीं सका और गिरते हुए उसकी नाक भी नष्ट हो गई ॥६॥

यद्यपि वृत्र के हाथ-पैर नष्ट हो गये थे फिर भी वह मरा नहीं तब इन्द्र ने उसके स्कन्ध में वज्र मारा और वृत्र क्षत-विक्षत होकर गिर पड़ा ॥७॥

जैसे नदियां अपने किनारों को तोड़ देती हैं उसी प्रकार नदियां पड़े हुए वृत्र के ऊपर से बह गईं। जिस जल को वृत्र ने अपनी शक्ति से रोक रखा था अब उन्हीं नदियों के नीचे वह पड़ा हुआ था ॥८॥

वृत्र की माता दानू वृत्र की रक्षा के लिए उस पर टेढ़ी गिर गई परन्तु इन्द्र के वज्र प्रहार से वह भी मारी गई और जैसे गाय बछड़े के पास पड़ी हो इसी प्रकार दानू वृत्र के ऊपर पड़ी थी ॥९॥

बराबर बहते हुए विश्रामरहित नदियों के जल के नीचे बेहोश वृत्र का शरीर पड़ा है और नदियां इन्द्र के शत्रु के नाम रहित शरीर को बहा ले गईं और घोर अन्धकार में डुबा दिया ॥१०॥

जैसे पणि गायों को रोक रखते थे, इसी प्रकार दासों द्वारा नदियों का जल रुका हुआ था और उनके निकलने का द्वार बन्द था। जब इन्द्र ने वृत्र को मारा तो वह जल की रोक भी खुल गई ॥११॥

हे इन्द्र, जब वृत्र ने तुम्हारा विरोध किया था तो जैसे घोड़ा अपनी पूछ से आघात का निवारण करता है उसी प्रकार तुमने उसका निवारण कर दिया। हे वीर इन्द्र, तुमने नदियों को और सोम को प्राप्त कर लिया और सप्त सिन्धुओं को प्रवाहित कर दिया ॥१२॥

बिजली गिरी, मेघ गर्जन हुआ, तूफान और कुहरा छा गया। परन्तु इस सब से इन्द्र को कोई हानि नहीं हुई। जब इन्द्र और वृत्र युद्धरत हुए तो इन्द्र ने पूर्ण विजय प्राप्त की ॥१३॥

हे इन्द्र, जब तुमने वृत्र को मार डाला तब क्या तुमने किसी अन्य शत्रु को वृत्र का बदला लेने के लिए आते देखा था कि घबराये बाज पक्षी के समान तुम एक साथ निन्यान्वे नदियों के पार चले गये ॥१४॥

बज्रधारी इन्द्र सब स्थावर व जगंम प्राणियों के स्वामी हैं। वे ही सींग वाले व बेसींग के सब पर तथा मनुष्यों पर शासन करते हैं। जैसे रथ के पहिये लीक में चलने में व्यवस्थित रहते हैं इसी प्रकार इन्द्र सब को व्यवस्थित रखते हैं ॥१५॥

इस सूक्त में पहली बात देखने की यह है कि पहली ऋचा में ऋषि कहते हैं कि इन्द्र ने पहाड़ों को तोड़कर नदियों को निकलने का रास्ता बनाया। यदि इन्द्र मनुष्य सेनापति था, तो उससे बिना बारूद के पहाड़ों को तोड़कर नदियों के निकलने का रास्ता कैसे बनाया जा सकता था और ऐसा उल्लेख कहीं नहीं है कि उस प्राचीन काल में भी इन्द्र के पास बारूद थी। यही बात मंडल ५ सूक्त ३२ व ऋचा १ में कही गई है कि इन्द्र ने पहाड़ों को काट कर वृत्र को मार कर नदियों को बाहर निकाला। यह किसी मनुष्यों की सेना का आक्रमण नहीं था, वरन् एक प्राकृतिक घटना थी, जिसमें भूकम्प हुआ तूफ़ान आये और कई पहाड़ भी धसक गये, जिससे उनमें बन्द जल नदी के रूप में प्रवाहित हो गया। इसी सूक्त की ऋचा १३ में कहा भी है कि उस समय बिजली गिरी, तूफान आये।

दूसरी विशेष बात यह है कि ऋचा १२ में उन नदियों को जो इस घटना में प्रवाहित हुई उनको सप्त सिन्धु कहा है। जिस प्रदेश में होकर 'सप्त सिन्धु' बही होगी उस प्रदेश का नाम भी 'सप्त सिन्धु' प्रदेश हो गया होगा। और सप्त सिन्धू' प्रदेश तो आर्यों का निवास स्थान प्रसिद्ध ही है। इसी सप्त सिन्धू को पारसियों की पुस्तक जन्दावस्था में 'हप्त हिन्दू' कहा गया है। अथवा यह कहा जाय कि यह सूक्त उस समय और उस घटना का वर्णन करती है कि जब 'सप्त सिन्धु' प्रदेश पहली बार बना। कदाचित इसी लिए पहली ऋचा में ही ऋषि कहते हैं कि हम इन्द्र के सबसे पहले काम का बखान करते हैं। या यह कहा जाय कि यहाँ से आर्य जाति का इतिहास प्रारम्भ होता है।

तीसरी बात यह है कि जब यह भूकम्प और तूफान शान्त हुए तो उषा और सूर्य फिर आकाश में प्रकाशित हो गये और उस प्रकाश में दीख पड़ा कि इन्द्र के शत्रु दस्यु लोग सभी उस घटना में नष्ट हो गये। वह भूकम्प और तूफान बड़े तीव्रतर थे जैसे कि आजकल भी कहीं-कहीं घटित होते हैं जिनमें पृथ्वी में दरार पड़ जाती है नगर के नगर धसक जाते हैं और सहस्रों व्यक्ति नष्ट हो जाते हैं। और उसके पश्चात् फिर साधारण दिन निकलता है। यहाँ तक कि सूक्तकार १४वीं ऋचा में पूछता है कि हे इन्द्र तुम्हारा वज्र और तूफान तो घटना के बाद सहसा ऐसे अन्तर्ध्यान हो गये जैसे कि तुमको कोई नया शत्रु दिखाई पड़ा हो और तुम भय से दूर निन्यान्वे नदियों के पार चले गये। कदाचित् इस हास्य रस के व्यंग के आधार पर ही पौराणिक वृतांत में कहा गया है कि इन्द्र ब्रह्महत्या के डर से भाग कर एक तालाब में कमल की डंडी में छिप गये। परन्तु यह कल्पना मनगढ़न्त है क्योंकि ऋग्वेद का वृत्र ब्राह्मण था ही नहीं। वह तो दस्युराज था अर्थात् कन्द्राओं में रहने वाले पत्थर युगीन चपटी नाक वाले ठोडी रहित असभ्य लुटेरों का सरदार था।

एक और बात बड़ी महत्वपूर्ण है। दूसरी ऋचा में कहा गया है कि जो नदियाँ (सप्त सिन्धु) बाहर निकलीं वे समुद्र की ओर बह चलीं। अथवा वह नदियाँ आपस में एक दूसरे में नहीं गिरीं वरन् समुद्र में जाकर मिल गईं। इसका अर्थ है कि उस समय सप्त सिन्धु प्रदेश के दक्षिण में समुद्र था और वह उत्तर की ओर उतना बढ़ा हुआ था कि आजकल इन नदियों के आपस में मिलने के जो स्थान हैं वह उस समय समुद्र के नीचे थे। इसका समर्थन अनेक अन्य सूक्तों में भी है। मण्डल ७ सूक्त ९५ ऋचा

२ में कहा है कि सरस्वती पहाड़ों से निकलकर समुद्र में मिल जाती है। इसी प्रकार मंडल १० सूक्त ७५ ऋचा ५ के अनुसार सतलज, व्यास, रावी, चिनाब, झेलम भी समुद्र में गिरती थीं। अब यह इन्ड्स में मिलती हैं।

ऋग्वेद की कथा में और पौराणिक इन्द्र वृत्र युद्ध की कथा में पृथ्वी आकाश का अन्तर है। सबसे मुख्य बात तो यह है कि ऋग्वेद की कथा उस समय की है जबकि सप्तसिन्धु प्रदेश का निर्माण हुआ और पौराणिक कथा बहुत बाद, लाखों वर्ष पीछे, वैवस्वत मनवन्तर की प्रथम चतुर्युगी के त्रेता युग की है (देखिये भागवत पुराण स्कन्ध ६ अध्याय १०)। दूसरी बड़ी विचारणीय बात यह है कि पौराणिक कथा में 'सप्त सिन्धु' नदियों को पहाड़ काट कर प्रवाहित करने का कहीं उल्लेख नहीं है। पौराणिक कथा कैसे और क्यों बनी यह नहीं कहा जा सकता, परन्तु यह स्पष्ट है उसका ऋग्वेद की कथा से कोई सम्बन्ध नहीं है और न उसका कोई महत्व है। पुराणों का वृत्र तो ज्ञानी आत्मदर्शी है न कि लुटेरा पत्थर युगीन असभ्य लुटेरा। इसके अतिरिक्त एक बड़ा भारी अन्तर और भी है। पुराणों का इन्द्र मनुष्य रूपी देवताओं का राजा है जिनके परिवार होते हैं और जिनके शरीर पर अस्त्रों के प्रहार से घाव भी होते हैं। पुराणों में मुख्य देवता भगवान विष्णु हैं और उनकी ही आज्ञा सहायता व तेज पाकर इन्द्र वृत्र से युद्ध करने को जाता है परन्तु ऋग्वेद में इन्द्र सर्वोपरि देवता है और विष्णु उसके सहायक उससे छोटे दर्जे के देवता हैं। कदाचित् इसी कल्पना को सुरक्षित रखने के लिये पुराणों में विष्णु को इन्द्रानुज भी कहा है क्योंकि पुराणों के इन्द्र व उसके सहायक विष्णु वामन दोनों के पिता कश्यप ऋषि हैं। परन्तु ऋग्वेद में इन्द्र के पिता कश्यप नहीं हैं और वामन का तो ऋग्वेद में नाम भी नहीं हैं। पौराणिक इन्द्र के वज्र का निर्माण दधीच ऋषि की हड्डी से होता है परन्तु ऋग्वेद के इन्द्र का वज्र त्वष्टा बनाता और वह बिजली के स्वरूप में कार्य करता है।

ऋग्वेद का इन्द्र कोई मनुष्य नहीं है इसके अनेक प्रमाण हैं। मंडल १ सूक्त १६४ की ऋचा ४६ में कहा है कि ऋषियों ने इन्द्र, यम, वरुण, अग्नि, मित्र आदि भिन्न-भिन्न नाम एक ही शक्ति को दिये हैं। मंडल ३ सूक्त ५५ ऋचा ८ व १७ में कहा है सम्पूर्ण देवता इन्द्र में ही निवास करते हैं। मंडल ६ सूक्त ४७ ऋचा १८ में कहा है कि इन्द्र अपनी इच्छा से अनेक रूप धारण करते है। मंडल २ सूक्त १ ऋचा ३ में अग्नि व इन्द्र को एक ही बताया है। मंडल ८ सूक्त ८९ ऋचा ३ में तो कह डाला, "इन्द्र को किसने देखा है? हम किसको नतमस्तक हों?" और उसी सूक्त की ऋचा ४ व ५ में इन्द्र कहते हैं "मैं ही आकाश पृथ्वी को पृथक् करता हूँ ... आकाश के सर्वोच्च स्थान पर मैं हूँ"। मंडल ८ सूक्त ८५ ऋचा ६ में कहा है कि "इन्द्र ने ही सारे संसार और सब प्राणियों को उत्पन्न किया"। अस्तु इन्द्र मनुष्य न होकर प्रकृति की सर्वोच्च शक्ति है। न वह आक्रमणकारी आर्यों का सेनापति है और न विद्रोही ग्रामीण आर्यों का नेता।

फिर देखिये वृत्र से युद्ध करने में इन्द्र के साथ मरुद्गण (तूफान के देवता) भी साथ थे (देखिये मंडल १ सूक्त २३ ऋचा ८ व ९; मंडल ८ सूक्त ८५ ऋचा ७व८) और मंडल ७ सूक्त ८३ ऋचा ९ जल के देवता वरुण इन्द्र के साथ वृत्र के युद्ध में थे। अनेक सूक्तों में इन्द्र के बिना भी अन्य देवता वृत्र के मारने वाले कहे गये हैं। मंडल १ सूक्त ५९ ऋचा ६ व मंडल १ सूक्त ७८ ऋचा ४ में अग्नि वृत्र को मारने वाले कहे हैं। सोम भी वृत्र को मारते हैं (१-९१-५व९-१-३)। मंडल ८ सूक्त ८ ऋचा ९ में अश्विन वृत्र को मारते हैं। इस से स्पष्ट है कि इन्द्र व वृत्र का युद्ध एक प्राकृतिक घटना का वर्णन है।

३

वृत्र की कथा का रहस्य

वृत्र की कथा का बड़ा अद्भुत रहस्य है। राजतरंगिणी व नीलमत पुराण के अनुसार कशमीर किसी समय एकबड़ी भारी झील थी। इसका नाम 'सतीसर' था। सती शिव जी की पत्नी थी जो कैलाश पर रहते थे। कदाचित गरुडों के डर से नाग लोग भाग कर कश्मीर की झील के किनारे शिव जी की संरक्षकता में रहने लगे। कहते हैं कि उनका राजा नील नाग था। उस झील में से एक दानव निकला। उसका नाम था 'जलोद्भव'। वह नाग लोगों को नष्ट करता था। इस से नील नाग ने कश्यप जी से शिकायत की। उन्हीं ने शिव, विष्णु ब्रह्मा आदि देवताओं

को बुलाया। शिवजी ने त्रिशूल मारकर दक्षिण का पहाड़ तोड़ा। उस जगह से झील का पानी नदी के स्वरूप में बह निकला। जब झील सूखने लगी तो जलोद्भव ने बाराह का रूप रखके उसी रास्ते से बाहर भागने का प्रयत्न किया, तब विष्णु ने चक्र से उस का सिर काट दिया। जिस स्थान पर उस बाराह का सिर कटा उस का नाम बाराह मूला पड़ गया। यही स्थान कश्मीर का बारामूला है जहां से झेलम नदी बाहर निकलती है।

जियोलोजी अर्थात भूतत्वविज्ञान इसका समर्थन करता है। बृटिश इन्साइक्लोपीडिया के १९६४ के नवीनतम संस्करण के खंड (Volume) १२ के पृष्ठ ८८७ पर लिखा है कि एक समय कशमीर पहाड़ों से घिरा हुआ एक समुद्र था और उसमें एक ज्वालामुखी द्वीप समूह था। कदाचित् उस समय सिन्धु घाटी और झेलम घाटी दोनों में जल भरा होगा और कशमीर के मध्यवर्ती पहाड़ों की चोटियां द्वीप समूह बन गई होंगी। यह बहुत पुरानी बात है। कदाचित् उस समय कशमीर का विस्तार भी अधिक था और उसकी सीमा कैलाश व मानसरोवर को छूती होगी। कशमीर के पहाड़ों की चट्टानें नेपाल की सीमा तक पाई गई हैं। उस समय ये सब पहाड़ इतने ऊंचे नहीं थे। भूतत्त्व शास्त्र के अनुसार हिमालय पर्वत ने इतनी ऊंचाई कई बार के उत्थान से प्राप्त की है हिमालय के बाहरी भाग शिवालिक पर्वत शृंखला में आदिम मनुष्यों की उत्पत्ति हुई ऐसा विद्वानों का मत है। उन मनुष्यों के पूर्व रूप बानरों के अवशेष शिवालिक की पहाड़ियों में पाये गये। उन अवशेषों को रामापिथीकस व सिवापिथीकस इत्यादि नाम दिये गये हैं। इन्हीं के वंशज जब मनुष्य की श्रेणी तक उन्नति कर गये तब वह ही कदाचित् कशमीर के पत्थर-युगीन दस्यु लोग हो गये। इन दस्यु लोगों के अतिरिक्त उस समय के नीचे पहाड़ों के दर्रे से होकर मध्य एशिया से नाग लोग आकर कश्मीर में बस गये होंगे। ये लोग 'अही' वंश के प्रतीत होते हैं। ये लोग दस्यु की अपेक्षा अधिक सभ्य और शान्तिप्रिय थे। इन्होंने कैलाश पर रहने वाले योगीराज शिव का संरक्षण प्राप्त किया। इनमें सर्प अथवा नाग पूज्य समझा जाता था। भगवान शिव को नागों के अलंकारों से विभूषित किया जाता है। शिव जी नागों को वश में करने की विद्या में निपुण थे और इसी लिये अही लोगों के पूज्य हुए और कश्मीर का नाम सतीसर पड़ा।

इनके अतिरिक्त इन पहाड़ों में रहने वाली और भी अनेक जातियां थी। उनमें से कई के नाम ऋग्वेद में भी आये हैं, जैसे 'सिग्रि, अज, यक्ष' इत्यादि। एक जाति पिशाच नाम की थी। परन्तु यह इतनी जातियों का विस्तार तब हुआ जब कि 'सतीसर' का जल नदियों के स्वरूप में बाहर निकल गया और कश्मीर का प्रदेश मनुष्यों के रहने योग्य बन गया। सबसे पहले अही व नाग लोग आकर झील के तटवर्ती प्रदेश में बसे।

जब हिमालय पर्वत शृंखला का उत्थान हुआ तो उस से सम्बन्धित कश्मीर झील की तलहटी भी ऊपर को उठी और दक्षिण-ओर के पहाड़ धमके। इससे उन में दरारें पड़ गईं और झील का पानी बाहर निकल गया। जिस जगह बाराह रूप जलोद्भव मारा गया वह तो बारामूला स्थान झेलम की निकासी का बन गया। परन्तु उस पर्वत शृंखला (पीरपंजल) में और भी दरारें पड़ीं जहाँ से दूसरी नदियाँ निकलीं। राजतरंगिणी में कहा गया है कि भेद नाम के पहाड़ पर 'सरस्वती' देवी शोभायमान थीं। वह मनुष्यों के हित के लिए नदी बन गई। सरस्वती नदी मानसरोवर के पास से निकलती थी। इससे ज्ञात होता है कि उस समय कश्मीर की सीमा वहाँ तक पहुँची थी। ऋग्वेद में भी शम्बर के पुत्र भेद का उल्लेख मण्डल ७-सूक्त १८ ऋचा १८ व १९ तथा मंडल ७ सूक्त ८४ ऋचा २ में आया है। भेद को इन्द्र ने जीत कर आर्य राजा सुदास के अधीन कर दिया था। यह यमुना के पास युद्ध में हुआ था। सरस्वती उद्गम स्थान के पास ही यमुना का भी निकास है। और फिर मंडल १ सूक्त ३२ ऋचा १२ में तो स्पष्ट कहा ही है इन्द्र ने सप्तसिन्धु (सात नदियों) को प्रवाहित किया। कोई-कोई महानुभाव सप्तसिन्धु का अर्थ सात समुद्र करते हैं जो कि बड़ी भूल है। समुद्र प्रवाहित नहीं होते। सात समुद्र क्या एक समुद्र की ओर बह चलेंगे? इसी सूक्त की दूसरी ऋचा में कहा ही है कि यह नदियां समुद्र की ओर बह चलीं। ऋग्वेद में भेद का नाम केवल उपरोक्त दो सूत्रों में आया है। इसका राजतरंगिणी से मिलान करने पर यह सिद्ध होता है कि सप्तसिधु के उद्गम स्थान कश्मीर में ही थे।

कांग्रेसी राजतन्त्र में गणतन्त्र का उपहास

श्री नि० मुखोपाध्याय

गणतन्त्र के नाम पर स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही साथ कोटि कोटि जनता को धोखा देते रहना ही कांग्रेसी शासन का प्रयास रहा है। इनका मूल एवं भूल पथ-प्रदर्शन अपने स्वार्थ को बचाये रखने में ही व्याप्त रहा है। अपने पूर्वजों के गौरवमय कीर्तिओं से गर्वित होने का सौभाग्य प्राप्त करना तब ही सम्भव हो सकता है, जबकि वर्तमान पीढ़ी के इतिहासवेत्ता उन पर प्रकाश डालने तथा जनता को अवगत कराने का प्रयत्न करें। परन्तु संसार के किसी भी स्वाधीन देश में इसका व्यतिक्रम केवल हिन्दुस्तान में ही विद्यमान है। यहां का शासक वर्ग यह चाहता है कि स्वाधीन देश के स्वाधीन नागरिक अपने पूर्वजों की कीर्तिमान गाथाओं का अवलोकन करें। "चोर की दाढ़ी में तिनका"—कहीं सच्चाई जनता के सामने प्रकट न हो जाये, इस भय से ही कांग्रेस शासन प्रत्येक विषय में झूठा प्रचार करता है तथा मिथ्या प्रणाली अपनाये हुये है। कुछेक उदाहरण निम्न प्रकार है :

(क) राष्ट्रीय पताका—यह निर्विवाद सत्य तथा सर्व मान्य है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व बीसवीं सदी के आरम्भ से लेकर सन् ४२ के आन्दोलन पर्यन्त इस देश के स्वतन्त्रता संग्रामी दलों के सामने राष्ट्रीय झण्डे के रूप में तिरंगा झण्डा (जो अब कांग्रेस दलीय झण्डा है) ही एक मात्र प्रतीक था, यद्यपि इन संग्रामियों की कार्यप्रणाली पृथक-पृथक रूप में हीं व्याप्त थी। एक पक्ष अहिंसा नीति में आस्था रखने वाला था तो दूसरा क्रान्तिकारी में। किसके प्रभाव तथा चेष्टा से स्वतन्त्रता मिली यह प्रश्न अन्यत्र विचारणीय है। यह तिरंगा झण्डा कांग्रेस संस्था का दलीय झण्डा है। हिन्दुस्थान में एकाधिक राजनैतिक संस्था हैं। हिन्दुस्थान का प्रत्येक नागरिक कांग्रेस संस्था के प्रति आस्थावान नहीं है। यह देश कांग्रेसियों की पैत्रिक सम्पत्ति नहीं है। अस्तु, कांग्रेस संस्था का दलीय झण्डा राष्ट्र का प्रतीक कैसे हो गया ? राष्ट्रीय झण्डे को हूबहू वैसा ही रखना, केवल चरखे के स्थान पर अशोक चक्र को अंकित कर देना (जब कि चक्र दोनों में ही है—अशोक चक्र में भी और चरखे में भी), क्या धूर्ततापूर्ण धोखा नहीं माना जाना चाहिये ? एक ही रूप, एक ही रंग लिए हुए कांग्रेसी झण्डा तथा राष्ट्रीय झण्डा कोटि-कोटि नागरिक के लिए कोई अन्तर नहीं रखता। अधिकांश जनता अनपढ़ है और इसीलिए एक बहुत बड़ा धोखा दिया गया है ताकि वे अनपढ़ जनता किसी भी तिरंगे झंडे को ही (अर्थात् कांग्रेसी झण्डा तथा राष्ट्रीय झण्डा) राष्ट्रीय झण्डे का सम्मान दें और वे कांग्रेस को ही इस देश की एक मात्र प्रतिनिधि संस्था समझ लें। यह एक अत्यन्त नीच शठतापूर्ण कार्य है। राष्ट्रीय झण्डे में चरखा के स्थान पर अशोक चक्र के चिह्न को सम्मिलित कर दिया गया, केवल जनता को गुमराह करने के उद्देश्य से। क्या यह प्रणाली देश के साथ धोखेबाजी नहीं है ? होना तो यह चाहिए था कि राष्ट्रीय झण्डे की रूप-रेखा ही अन्य प्रकार की हो अथवा कांग्रेस संस्था अपना दलीय झण्डा परिवर्तन कर ले। संविधान में इस बात की मान्यता नहीं है कि राष्ट्रीय झण्डा किसी संस्था के दलीय झण्डे के अनुरूप हो। परन्तु फिर भी राष्ट्रीय झण्डा तथा कांग्रेसी झण्डा एक-दूसरे के अनुरूप ही हैं ९९.९९ प्रतिशत। और यही है गणतन्त्र के नाम पर एक बहुत बड़ी प्रतारणा।

(ख) राष्ट्रीय गान—'जन-गण-मन अधिनायक'—यह अधिनायक कौन है ? जब १९११ में इंग्लैण्डेश्वर तथा तत्कालीन भारत-सम्राट् पंचम जार्ज का दिल्ली में आगमन हुआ था, उस समय कवि की चाटुकार लेखनी ने उस सम्राट् की स्तुति वन्दना की थी इसी 'जन-गण-मन-अधिनायक' गान से। यह 'अधिनायक' वह सम्राट है जो कभी भी हिन्दुस्तानी नहीं था। जिन अंग्रेजों से स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये अगणित हिन्दुस्तानी नर-नारियों ने अपने प्राणों की आहुति दी है, उसी अंग्रेज सम्राट के स्तुति गान को ही 'राष्ट्रीय गान' के रूप में स्वतन्त्र हिन्दुस्तान में कांग्रेसी शासन काल में गाया जा रहा है। क्या इसी दिन के लिए ही हमारे प्रिय स्वतंत्रता-सेनानिओं ने नाना प्रकार की अकल्प-

नीय अमानुषिक यन्त्रणायें झेलीं थीं, हंसते-हंसते मृत्यु को वरण किया था ? कविवर नजरूल इस्लाम की उक्ति ही सत्य प्रतीत होती है—

"फांसीर मंचे गेये गेलो जारा
जीवनेर जयगान—
आसि अलक्षे दांड़ायेछे तारा
दिबे कोन प्रतिदान ?"

(फांसी के मंच पर जो जीवन के जयगान गाकर चले गये, वही लोग अलक्ष में [मानव दृष्टि से परे] आकर खड़े हुये हैं, तुम उन्हें प्रतिदान में क्या दोगे ?) । उनके त्याग और बलिदान के प्रतिदान में उनकी आत्माओं को वही गान 'राष्ट्रीय गान' के रूप में सुनना पड़ रहा है, जो गीत उनके तथा सारे राष्ट्र के परम शत्रु अंग्रेज सम्राट की स्तुति-वन्दना के लिये ही लिखा तथा गाया गया था । इससे बढ़कर कृतघ्नता और क्या हो सकती है । अंग्रेज गए तो क्या हुआ कांग्रेस तो है ?

"पंजाब-सिन्धु-गुजरात···" सिन्धु अब कहां है अपने पास ? वह तो भेंट में चढ़ गया पाकिस्तान को । परन्तु उसे हिन्दुस्तान के 'राष्ट्रीय-गान' में बराबर बनाये रखा गया है । अर्थात सिन्धु जो पाकिस्तान में है, अपने 'राष्ट्रीय-गान' में सम्मिलित कर, पाकिस्तान का भी जयगान किया जा रहा है । यह धोखा तथा प्रतारणा के अतिरिक्त और क्या है ?

"पंजाब, सिन्धु, गुजरात, मराठा
द्राविड़, उत्कल, बंग···"—यह द्राविड़ कहां है और कौन है ? जब अहर्निशि अपने 'राष्ट्रीय·गान' के माध्यम से उन्हें 'द्राविड़' शब्द से सम्बोधित किया जा रहा है, जबकि वस्तु स्थिति में वे 'द्राविड़' नहीं है, तब उनके मन में अन्य के प्रति विद्वेषभावना उत्पन्न होना स्वाभाविक है । और ऐसी परिस्थिति देश के लिये घातक तथा क्षतिकारक है । यह एक धोखा है देश के साथ, जनता के साथ ।

इस 'राष्ट्रीय-गान' में असम का कहीं उल्लेख ही नहीं है । परन्तु उन्हें इसी गीत को 'राष्ट्रीय-गान' के रूप में गाना पड़ता है । अस्तु, स्वभावतः ही असमिओं के मन में हिन्दुस्तान के अन्य प्रान्तों के प्रति द्वेष भाव उत्पन्न होना स्वाभाविक ही तो है । वे अपने आपको हिन्दुस्तानी मान लेने में यदि असमर्थ पाते हैं तो इसका उत्तरदायित्व उन पर नहीं है । दोष है 'राष्ट्रीय-गान में । दोष है 'राष्ट्रीय-गान' के चुनाव में देश के साथ धोखा करने वालों का । जिस 'वन्देमारतम्' मन्त्र ने सारे हिन्दुस्तान की जनता में स्वाधीनता संग्राम के लिए प्रेरणा दी थी, जिस गीत में जात, प्रान्त, सम्प्रदाय, वर्ग जैसी भेद भाव नहीं है, है केवल मातृभूमि की स्तुति वन्दना तथा जयगान, वही होना चाहिये गणतन्त्र राष्ट्र का 'राष्ट्रगान' । परन्तु ऐसा नहीं हुआ है । रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने गान्धी जी को 'महात्मा से सम्बोधित किया था और बदले में गान्धी ने भी रवीन्द्रनाथ को 'गुरु' से सम्बोधित किया था । सम्भवतः इन दोनों के आभ्यन्तरीन सम्पर्क ने 'राष्ट्रीय गान' के चुनाव में, बहुतांश सहायता की हो । यह प्रजातन्त्र के नाम पर एक धोखा नहीं तो और क्या ?

(ग) शहीद दिवस—३० जनवरी को 'शहीद-दिवस' मनाया जाता है । परन्तु उस दिन 'शहीद' कौन हुए थे ? १९४८ के ३० जनवरी के दिन गोली से गांधी की मृत्यु दिवस को ही 'शहीद-दिवस' के रूप में किस आधार पर मनाया जाना चाहिये ? गांधी स्वतन्त्रता संग्राम में किस अंग्रेजी सेवक के हाथों मारे गये थे ? उनकी मृत्यु स्वतंत्र हिन्दुस्तान में हुई थी । वे चीनी अथवा पाकिस्तानी आक्रामकों की गोली से भी नहीं मारे गए थे । तब वे 'शहीद' कैसे हो गये ? यदि गांधी को 'शहीद' के नाम से जाना जा सकता है तो प्रेम अहूजा भी 'शहीद' के नाम से जाना जा सकता है क्योंकि उनकी भी मृत्यु नानावटी की गोली से हुई थी, ठीक उसी प्रकार जैसे गांधी की मृत्यु नाथूराम गोडसे की गोली से हुई थी । कानूनन सजा दोनों क्षेत्र में दोनों की हुई है । आततायी के हाथ मृत्यु होने पर ही यदि गांधी को 'शहीद' मान सकते हैं, तो प्रत्येक आतताईयों की गोली से मरनेवाले अगणित नर-नारी भी 'शहीद' माने जाने चाहियें । 'शहीद' तो वे हैं जिन्होंने देश के लिए अपने प्राणों की आहुति दी है । 'शहीद' तो वे हैं जो देश के हित में साम्राज्यवादी तथा औपनिवेशवादी विदेशी राजकर्मचारी की गोली का शिकार बने, परन्तु गांधी को मारनेवाले आततायी को कानूनी सजा मिली है जैसा कि प्रेम अहूजा को मारने वाले आततायी को मिली थी । तब

किस दृष्टिकोण से गांधी 'शहीद' हो गये ? गांधी किसी भी दिशा में 'शहीद' नहीं हुए हैं, यह बात मालूम होते हुए भी कांग्रेसी शासकगण देशवासिओं को एक धोखा केवल इसलिए दे रहे हैं कि वे अपने 'बापूजी' के निधन-दिवस की स्मृति बनाए रखें। और वे यह भी चाहते हैं कि देश का प्रत्येक नागरिक भी ऐसा ही करे (चाहे सबको यह स्वीकार हो अथवा न हो)। परन्तु उन्हें सम्भवतः यह भय था कि हो न हो, जनता 'गांधी-निधन-दिवस' को महत्व देने में सहयोग न दे और इसीलिए 'शहीद-दिवस' के नाम से धोखा देकर जनता को (३० जनवरी को ही) 'गांधी-निधन-दिवस' मनाने का एक ढोंग रचा है। यदि यथार्थ तथा निःस्वार्थ भावना से ही 'शहीद-दिवस' मनाना है तो वह ३० जनवरी नहीं, वरन् सकल विवाद से परे वह दिन होना चाहिये '८ अगस्त'। अथवा १९५७ के स्वतन्त्रता संग्राम से लेकर १९४२ के स्वतन्त्रता-संग्राम पर्यन्त ऐसी बहुत-सी तिथियां हैं जिन्हें 'शहीद-दिवस के रूप में मनाया जा सकता है। परन्तु सेवा सर्वदा नये नये घाव की ही होती है जिसकी व्यथा अभी अभी अनुभूत होती है तथा जिसकी स्मृति मानसपट पर ताजी रहती है। ८ अगस्त १९४२ के दिन वह तिथि है जिस दिन अगणित तथा अवर्णित नर नारी (अबाल-वृद्ध-वनिता) अपने प्राणों की आहुति दी थी—अंग्रेजी शासक की गोली से—केवल हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता के लिए। तदनन्तर १९४५ पर्यन्त अर्थात द्वितीय महायुद्ध में 'आजाद-हिन्द-सेना' में कार्यरत दिवंगत योद्धाओं को भी 'शहीद' होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। तदुपरान्त १९४७ के १४ अगस्त (पाकिस्तान-निर्माण दिवस) तथा १५ अगस्त पर्यन्त, जिस समय हिन्दुस्तान के तीन टुकड़े बनाकर, अंग्रेज यहां से चले गये कांग्रेस को गद्दी पर बैठाकर, किसी को भी 'शहीद' होने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है। तब अचानक १९४८ के ३० जनवरी के दिन को ही 'शहीद-दिवस' की ख्याति कैसे प्राप्त हो गयी ? यह है कांग्रेसी शासक वर्ग का एक सुपरिकल्पित धोखा देश की जनता के साथ। और इसी 'शहीद-दिवस' के नाम से (अर्थात ३० जनवरी को) राजघाट, गांधीघाट, गांधीधाम और न जाने कौन-कौन से धाम में केवल गांधी-स्तुति-क्रिया चलती रहती है। इसी तथाकथित 'शहीद-दिवस' के दिन आकाशवाणी से राष्ट्रपति अथवा उपराष्ट्रपति का भाषण आरम्भ होता है "Two decades ago" (दो दशाब्दि पूर्व) से। कितना शठतापूर्ण विज्ञापन है इस कांग्रेसी सरकार का। भला 'शहीद-दिवस' के साथ दो दशाब्दि पूर्व का क्या सम्बन्ध है ? दो दशाब्दि पूर्व कोई भी 'शहीद' नहीं हुआ था। जिन हुतात्माओं को 'शहीद' होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वे दो दशाब्दि पूर्व से बहुत पूर्व अर्थात् १९४२ तथा १९४५ पर्यन्त तथा दशाब्दि पूर्व के अनेक पश्चात् अर्थात १९६२ में चीनिओं के आक्रमण के समय एवं १९६५ में जब पाकिस्तानी आक्रमण हुआ था। परन्तु धूर्त कांग्रेसी शासन ऐसी परिस्थितियों को बनाये रखना चाहता है कि देश की जनता मूर्ख बनी रहे और यही मानती रहे कि गांधी ही 'शहीद' है जिनकी स्मृति में ३० जनवरी को ही 'शहीद-दिवस' मनाते हैं। और इसी उद्देश्य से देश के साथ, जनता के साथ धोखेबाजी की जा रही है।

(घ) **मुद्रा-प्रचलन**—विश्व में किसी भी प्रजातन्त्र देश में किसी व्यक्ति विशेष के नाम पर मुद्रा का प्रचलन नहीं होता। केवल राजा, महाराजाओं के नाम से ही मुद्रा प्रचलित होती है। अतः जहां पर राजाशाही शासन है वहां पर ही व्यक्ति विशेष के नाम से (अर्थात राजा के नाम से) मुद्रा प्रचलित हो सकती है। प्रजातन्त्र देश के संविधान में इस बात की मान्यता नहीं रहती है कि वहां पर किसी व्यक्ति विशेष के नाम पर मुद्रा प्रचलित हो। परंतु यह कांग्रेसी शासन ने संविधान का उल्लंघन कर नेहरू की प्रतिमायुक्त मुद्रा प्रचलित कर दी है। क्या संविधान का शासन द्वारा ही उल्लंघन देश के साथ धोखा नहीं है ? यह भी सुनने में आ रहा है कि अदूर भविष्य में इस देश में गांधी के नाम पर भी मुद्रा प्रचलित होने जा रही है। यह स्पष्ट हो चुका है कि गणतन्त्र का ढोंग रचाकर, मनमानी संविधान बनाकर, जब चाहे और जैसे चाहे उसी संविधान को तोड़-मरोड़ कर, वह धोखेबाज कांग्रेसी शासन इस देश को गांधी और नेहरू की पैत्रिक सम्पत्ति बनाना चाहता है। विश्व में सर्वोत्तम प्रगतिशील प्रजातन्त्र देश अमेरिका में भी अब्राहम लिंकन तथा जार्ज वाशिंगटन

(शेष पृष्ठ १३ पर)

अश्लील साहित्य और कानून

श्री अश्लेष

एक पुस्तक Lady Chatterleys' Lover' के विषय में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया है कि यह पुस्तक अश्लील है और वह भारत में नहीं चल सकती। इस निर्णय ने भारत के प्रगतिशील लेखकों की बासी खिचड़ी में उबाल उत्पन्न कर दिया है। यह पुस्तक कैसी है, हम यहाँ लिखना नहीं चाहते। परन्तु हमें उन लेखकों की विचार शैली पर दया आती है जो यह कहते हैं कि लेखक के लेखों पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं होना चाहिए। अभिप्राय यह कि लेखक एक बेलगाम का घोड़ा होना चाहिए।

वास्तव में यह विवाद कि अश्लील साहित्य अथवा कला-कृति पर प्रतिबन्ध हो अथवा न हो, नवीन नहीं है। यह बहुत पुराना है। पहले भी कुछ विशेष प्रवृत्ति के साहित्यकार शील और मर्यादा की सीमा पार कर कला-निर्माण करते रहे हैं और उनके लेखों पर प्रतिबन्ध लगाया जाता रहा है। यह ठीक है कि वह प्रतिबन्ध राज्य की ओर से नहीं रहा। इस पर भी प्रतिबन्ध रहा है और वह प्रतिबन्ध उस काल में बहुत प्रभावी रहा। यदि यह कहा जाये कि वर्तमान सरकारी प्रतिबन्ध से प्रबल था तो अतिश्योक्ति नहीं है।

उदाहरण के रूप में कोणार्क इत्यादि स्थानों के कहे जाने वाले मन्दिर हैं। वे मन्दिर तो थे नहीं। सम्भवतः किसी वासनारत राजा रईस के क्रीड़ा स्थान थे। अंग्रेजी सरकार और पुरातत्व के अधिकारी किसी भी, भूमि में से निकले ईंट-पत्थर के मकान को किसी नवीन सभ्यता के चिह्न अथवा किसी देवी-देवता के मन्दिर घोषित करने की लालसा रखते रहे हैं। भारत में देव-स्थानों और सभ्यताओं के ताने-बाने के अतिरिक्त भी कुछ रहा है।

कुछ भी हो, वर्तमान युग के बुद्धिमानों के इस भूमि पर उत्पन्न होने से पहले, भारत के 'सैंसर' ने उन कोणार्क इत्यादि स्थानों को जनता की दृष्टि से ओझल कर भूमि में दबा दिया हुआ था। और तो और, मुसलमानों के आने से पहले ही कालिदास, जिसने कुमार सम्भव इत्यादि में भारतीय मर्यादा और शील की सीमा का उल्लंघन किया था, को तत्कालीन प्रचलित साहित्य से बहिष्कृत कर दिया था। काम-सूत्र और इसी प्रकार के ग्रन्थ आज से एक सहस्र वर्ष पूर्व भी, जब संस्कृत भाषा का व्यापक प्रचार था, घर-घर में नहीं पढ़े जाते थे। अंग्रेजों के आने से पूर्व, रामचरित मानस की जो महिमा थी, वह कालिदास के कुमार सम्भव की नहीं थी। प्रश्न उत्पन्न होता था कि किसने यह बहिष्कार कराया था और इन पर किस बात का प्रतिबन्ध था? यह उस काल के विद्वानों, अध्यापकों और भले लोगों से लगाया प्रतिबन्ध था।

वैसा ही प्रतिबन्ध आज सरकार लगा रही है और दीवान चमनलाल साहब इसको कुछ कड़ा करना चाहते हैं। हम सरकारी प्रतिबन्धों के पक्ष में कभी नहीं रहे, परन्तु मर्यादा तो रखनी ही होगी। क्या ये प्रगतिशील लेखक किसी भले व्यक्ति द्वारा दी गयी सम्पत्ति को स्वेच्छा से मानने के लिए तैयार हैं? ये प्रगतिशील लेखक कम्युनिस्ट सरकारों द्वारा लगाये प्रतिबन्ध को मानेंगे। कारण यह कि वहाँ किसी की भी चलती नहीं। परन्तु भारत के सर्वोच्च-न्यायालय को किसी लेख अथवा कला-कृति पर सम्मति देने का अधिकार वे नहीं देना चाहते।

ये लोग कहते हैं, प्राचीन भारत में मन्दिरों की मूर्त्तियों, ग्रंथों में शील और मर्यादा का उल्लंघन मिलता है। कुछ लोगों ने यह सीमा उल्लंघन किया था, परन्तु विद्वानों और उनकी सम्मति को मानने वाली जनता ने उन कला-कृतियों को भूमिगत कर विस्मरण कर रखा था। जहाँ काशी के विश्वनाथ और अयोध्या के रघुनाथजी तथा मथुरा के केशवजी के मन्दिर की जनता में मान-प्रतिष्ठा थी, वहाँ खजुराओ और कोणार्क में कौन पूजा करने जाता था? कोई लिखा प्रमाण कि वहाँ कभी घंटे घड़ियाल बजते थे, मिलता नहीं।

यही बात काम सूत्र, कालिदास के कुमार सम्भव और गीत गोविन्द की थी। लोग इनको भूल चुके थे। कभी इनकी कथा होती होगी, प्रमाण नहीं मिलता। जब

विद्वानों और भले लोगों द्वारा दी गई सम्मति की अव-हेलना होने लगी तो सरकार का दण्ड चलने लगा।

जब इस्लामी राज्य ने देश में विद्वानों की मान-प्रतिष्ठा को कम किया तो राज दण्ड को उसका स्थान लेना पड़ा। दिन-प्रतिदिन राज दण्ड कड़ा किया जा रहा है। यह केवल इस कारण कि हमारे विश्व-विद्यालयों में मूर्ख अध्यापकों का बाहुल्य होता जा रहा है।

दिल्ली में यह खुले आम आरोप लगाया जा रहा है कि दिल्ली में कम-से-कम एक कन्या महाविद्यालय ऐसा है जहाँ रात के समय पैरिस की किसी 'नाइट क्लब' में लिया गया चलचित्र लड़कियाँ देखकर प्रगतिशील बन रही हैं। जब महाविद्यालयों की ऐसी स्थिति है तो फिर कानून क्यों न बनाया जाये?

सबसे बड़ी बात यह है कि ये लोग किसी 'सुप्रीम कोर्ट' के जज को भी यह अधिकार देना नहीं चाहते कि वह अश्लील को अश्लील कह सके।

भारत दण्ड विधान में पहले ही धारा २९२, २९३ और २९४ है, जिनके अनुसार अश्लील साहित्य इत्यादि को जब्त कर लेने का सरकार को अधिकार है और उसके निर्माण-कर्त्ता को दण्ड देने का अधिकार किसी फर्स्ट-क्लास के मैजिस्ट्रेट को है।

दीवान चमन लाल जी का कानून में संशोधन करने का बिल तो दो बातें करना चाहता है। एक तो अश्लीलता के लक्षण और दूसरे दण्ड में वृद्धि। वास्तव में ये संशो-धन ठीक दिशा में नहीं हैं।

अश्लीलता का लक्षण करना अति कठिन है। इस पर भी यह असम्भव नहीं। एक प्राचीन स्वम्भुव लक्षण है। वह यह कि ऐसा साहित्य अथवा ऐसी कला-कृति जिससे पढ़ने अथवा देखने वाले के मन में वासना उत्पन्न हो। सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीशों ने 'Lady Chatterleys Lover' के मुकद्दमे में अश्लीलता के ये लक्षण स्वीकार किये हैं :

Whether the tendency of the matter charged as obscene is to deprave and corrupt those whose minds open to such immoral iufluence, and into whose hands a publication of this sort may fall.

(अर्थात्—यह कृति जिस पर आरोप लगाया गया है, क्या वह उनको, जिनके मन पतनात्मक प्रभाव के लिए संग्रहणीय हैं और जिनके हाथ में वह कृति जाने की सम्भावना है, को पतित और विकृत करता है अथवा नहीं?)

यह लक्षण दोषपूर्ण है क्या? प्रगतिशील लेखक कहते हैं कि यह इतना अस्पष्ट है कि न्यायाधीश के निर्णय देने में बहुत स्वतन्त्रता है। इसे वे दोष मानते हैं। वास्तव में यह इस लक्षण का गुण है। न्यायाधीश प्रत्येक आरोपित कृति पर विचार करने के लिए स्वतन्त्र है और यदि न्याया-धीश ईमानदार और बुद्धिशील होगा तो उसका लाभ अधिकतर कलाकार को होगा।

हमारा विचार है कि अश्लीलता का यह लक्षण ठीक है। इस लक्षण के अनुकूल प्रतिबन्ध लगने चाहिएँ। यदि तो समाज के विद्वान और भले लोगों द्वारा बताई बात को लेखक तथा कलाकार स्वयं माने तो सरकार को हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं। यदि वे स्वेच्छा से मानने के लिए तैयार नहीं, तो उन पर सरकारी कानून बनेगा ही।

योरोप क्या करता है और क्या नहीं करता, यह हमारे विचार का विषय नहीं। हमारे विचार का विषय है, क्या हमारे लिए हितकर है? हम इन प्रगतिशील कलाकारों से पूछना चाहते हैं कि :—

(१) क्या वे समाज में 'यौन विषयक' व्यवहार अबाध और अनावृत्त चाहते हैं?

(२) क्या यह सत्य नहीं कि यौन व्यवहार एक निश्चित आयु से पहले अस्वीकार्य है? इस आयु का निर्णय शरीर विज्ञान के ज्ञाता करने का अधिकार रखते हैं, कला-कार नहीं।

(३) क्या यह सत्य नहीं कि यौन व्यवहार की इच्छा बालक-बालिकाओं में उस निर्णीत आयु से पहले उत्पन्न हो जाती है?

(४) क्या यह सत्य नहीं कि वर्त्तमान विकृत समाज में यौन व्यवहार इच्छा करने और स्वीकृत आयु के बीच की आयु के बालक-बालिकाओं को इस (यौन-व्यवहार) से

(शेष पृष्ठ २९ पर)

पाठकों की लेखनी से

इस स्तम्भ के अन्तर्गत हम यदा-कदा अपने प्रबुद्ध पाठकों की ओर से प्राप्त पत्रों को प्रकाशित करते हैं। रोडेशिया में अफ्रीकी क्रान्तिकारियों को दी गई फांसी पर भारतीय शासन की प्रतिक्रिया की प्रतिक्रिया स्वरूप श्री ज्ञानदेव भारतीय ने यह पत्र भेजा है। उनका कथन है कि बर्बर पुर्तगालियों की जेल में सड़ने वाले भारतीय क्रान्ति वीर मोहन राणाडे की मुक्ति के लिए हमारी बहादुर सरकार कितनी सेनाएं भेज रही है? तथा कच्छ ट्रिब्यूनल के अनुचित एवं अयुक्तिक निर्णय के विरोध से क्यों हिचकती है? आशा है हमारे पाठक इससे प्रेरणा लेकर समय-समय पर हमें अपनी प्रतिक्रियाओं से अवगत कराते रहेंगे।

—सम्पादक

महोदय,

रोडेशिया सरकार द्वारा तीन अफ्रीकियों को फांसी दिए जाने पर कुछ भारतीय बज्र मूर्खों द्वारा जो बासी कढ़ी में उबाल लाया गया है, वह देखते ही बनता है। वर्तमान वेश्या राजनीति के एक चारण चंचरीक ने तो यहाँ तक कह डाला कि रोडेशिया पर सशस्त्र सेनाएँ भेज दी जायँ। नाइन अपने पैर चाहे भले ही गन्दे रखे किन्तु बेचारी औरों के पैरों को तो वह उदरपोषणार्थ धोती ही है—यह लोकोक्ति उन क्लीव संसद सदस्यों पर तो खूब लागू होती है जो अपने घर में लगी आग को तो नजर अन्दाज किए हुए हैं, तथा अन्यों के सुधार की एजेन्सी लिए फिरते हैं—बेचारा वीर मोहन रानाडे आज तक पुर्तगाली कारा के सुदृढ़ सीखचों में असंख्य यातनाएं भोग रहा है—और भारतीय राजनीति के कुछ ऐयाश सदस्य स्त्री-सदस्यों से चुहल बाजी करते हैं। इसे लोक सभा न कह कर लैला मजनूं की सैरगाह कहा जाय तो अधिक अच्छा रहेगा। मोहन रानाडे की मुक्ति हेतु किसी ने नहीं कहा कि पुर्तगाली जेल को ध्वस्त कर दो। बाहरी एजेंटों की राजनीति—तूने भी क्या पिन्नक बाज चेले बनाए हैं। प्रखर राष्ट्र भक्त श्री भगतसिंह, राजगुरु, और सुखदेव की कमीनी हत्या की निन्दा करने में जिन तत्वों को तत्कालीन कांग्रेस महा समिति के अधिवेशन में पसीना आ गया था—आज अफ्रीका के प्रश्न पर वे ही तत्व धोतियों में से निकले पड़ रहे हैं। कोई कह रहा है वहां सशस्त्र सेनाएँ भेजो और उस सरकार को कुचल दो। इन मूर्खों की दृष्टि में रोडेशियायी न्यायालय का निर्णय तो गलत और निर्मम है तथा कच्छ निर्णय ठीक है—इन हुल्लड़बाजों से कोई यह तो पूछे कि क्या गुलाम और क्रीतदास तथा भिखमंगों की भी कोई प्रतिष्ठा है—ये तो 'मान न मान मैं तेरा महमान' वाली कहावत ही चरितार्थ कर रहे हैं। ये सेनाएँ, ये जनरल तथा ये भाषण हिन्दू जनता पर भले ही कहर ढा सकते हैं किन्तु कच्छ जैसे राष्ट्र प्रतिष्ठा के ज्वलन्त प्रश्न पर सब भीगी बिल्ली बने दिखाई पड़ते हैं—समस्त देश इन अवसरवादी और नास्तिक तथा अभारतीय श्वेताम्बरी नेताओं द्वारा बुरी तरह पिस रहा है। फिर भी आज का दब्बू और बुद्धू भारतीय नागरिक प्रजातंत्र (नहीं, नहीं इस बनियावादी एजेंट तंत्र) की जय बोलने में शान समझता है। एक बात अवश्य सत्य है कि नेताओं ने यह गुरु मंत्र अवश्य गाँठ बाँध लिया है कि भारत की मूर्ख जनता को और भी महामूर्ख नहीं बनाया तो अपनी राजनीतिक अय्याशी की खैर नहीं—नेताओं की इस मनोवृत्ति को पनपने में भारतीय समाचार-पत्र सुन्दर तथा स्वस्थ भूमिका अदा कर रहे हैं तभी तो ये सम्पादक फिसड्डी से फिसड्डी नेताओं की रोजमर्रा की बकवादों को सुन्दर संस्कृत निष्ठ हिन्दी में प्रकाशित करते हैं।

हां, तो तीन-चार दिन गोहाटी में कम्युनिस्ट और अयूबी गुण्डे हिन्दुओं से खुलकर खेलते रहे। उस प्रश्न पर बड़े बड़े चपर कनातियों की जीभ शायद तालू से चिपट गई—किसी संसद सदस्य ने यह नहीं कहा कि गोहाटी में गुण्डों से निबटने के लिए फौज भेजी जाय—भाषण प्रस्ताव समाचार पत्रों में अवश्य एक से एक बढ़कर प्रकाशित होते रहे और देखो रोडेशिया के प्रश्न पर क्या मजेदार अखाड़ेबाजी हो रही है।

कच्छ के मामले पर साफ क्लैव्य प्रदर्शन करने वाले

वाक्शूर स्मिथ को फाँसी दो का नारा बुलन्द कर रहे हैं।

अतीत में जो मूर्ख बिस्मिल, चन्द्रशेखर आजाद आदि महान राष्ट्र भक्तों की खिल्ली उड़ाते रहे वे ही पंगु अब हिमालय की चोटी को लांघने कुत्सित का प्रयास करते दिखाई दे रहे हैं। भगवान बचाये इन मूर्खों से इस देश को।

बीस वर्ष से लगातार पाकिस्तानी गुण्डों ने हिन्दुओं की नींद हराम कर रक्खी है—आये दिन सीमा पर लूट पाट, हत्याकाण्ड हो रहे हैं। और भारतीय संसद सदस्य मादक और रंगीन लोक सभा में बैठे केवल भाषणों में चिन्ता प्रकट करते रहते हैं—फिर भी इन अभागे हिन्दुओं की आंखें नहीं खुलतीं—इन्हीं की अज्ञानता और मूर्खता का लाभ उठाकर भ्रष्ट और चार सौ बीस नेता—हिंदुओं को कुचलने को बड़ी मर्दानगी से झट सेना और पुलिस भेज देते हैं—पुलिस और सेना की बुद्धि-दृष्टि बोतल में गर्क हो चुकी है—यही कारण है कि राष्ट्र में जो अँधेर हो रहा है उसे यह देख ही नहीं पाते। क्योंकि ये दोनों तब के भी तो नेताओं के मानसिक गुलाम हो चुके हैं।

इसका ताजा उदाहरण है कुछ चीनी गुण्डों द्वारा एक भारतीय कानस्टेबिल की अपने दूतावास में पिटाई और वह भी इन पटेबाजों की नोक के नीचे—वाह रे भारत के नागरिको डूब मरो चुल्लू भर पानी में।

भारत के अर्द्ध नारी नटेश्वर लोक सभाई केवल वहां विरोध पत्र भेजने का पाखण्ड रचाते हैं—भ्रष्ट और उच्छृंखल लोकतन्त्र की आड़ में भारत राष्ट्र का सहस्रों रुपया डकार कर भी कुछ लोगों को रूसी मुर्गा बनने में अधिक दिलचस्पी है।

हिन्दुओं को हिजड़ा बनाने का उपक्रम जो इन धूर्तों ने किया उसे हिन्दू अनुभव ही नहीं कर पाये क्योंकि सवत्र नेताओं ने अपने एजेन्ट बनाकर कुछ उपनेता रख छोड़े हैं जो इनकी गद्दी के मजबूत पहलू हैं—ये ही लोग वेचारी सीधी सादी अज्ञानी जनता को बहकाकर गुमराह करते हैं। अधिकांश भारतीय जनता अशिक्षित है उसे किंचित भी पता नहीं कि आज दुनिया की राजनीति कुछ कुख्यात दादाओं की चेली है। "घोर पक्षपात के प्रपात बह रहे, चापलूस रात को प्रभात कर रहे फलतः ये इस प्रकार के नौसिखिये उपनेता ही जनता की आंखों में धूल झोंकते हैं।

यही कारण है कि आज पृथ्वी पर जितनी हीन दशा हिन्दू की है उतनी किसी की नहीं।

घोर व्यक्तिवादी अनावश्यक अभिनन्दन की प्रथा और श्रद्धांजलियों के शब्द जाल में हिन्दू इतनी बुरी तरह उलझा हुआ है कि द्रुतगति से आसन्न विनाश का उसे रंचमात्र भी ज्ञान नहीं है—हिन्दुत्व और हिन्दू संस्कृति के समूलोच्छेद का उपक्रम गांधी नेहरू और लाल बहादुर इत्यादि अतीत के नास्तिक नेता सभी करते रहे और हिन्दुओं के कुछ पथ प्रदर्शक भी सस्ती लोकप्रियता अर्जित करने के लिए इनकी आरती उतारते रहे। "किमाश्चर्य-मतः परम्।"

आज भी प्रत्यक्ष देखने में आता है जब हिन्दू मरते पिटते हैं तो गाँधी नेहरू के मुतबन्ने कोई भी कष्ट अनुभव नहीं करते—और मुसलमानों के लिए जरा सी भी कोई खटपट हुई कि इनकी धोतियाँ ढीली पड़ जाती हैं—हिन्दुओं को इस तरह ये भेड़िये लताड़ते हैं जैसे कच्चा ही चबा जायेंगे।

हिन्दुओ! स्वामी रामतीर्थ ने कहा था कि नदियों की धारायें बदल गईं, ऊसर खेत लहलहा उठे, समय की गति तीव्रता से चल रही है और तुम अभी तक अन्ध-विश्वास, मिथ्या मतवाद तथा परस्पर राग-द्वेष में लिप्त हो, यदि इस विनाशकारी प्रवृत्ति में सुधार नहीं कर पाए तो हिन्दुओं को रसातल में जाने से कोई नहीं रोक सकेगा—उठो जागो और मार्ग बदलो अपने यशस्वी और तेजस्वी अतीत की आराधना करो।

अस्तु—अब भी कुछ विशेष नहीं बिगड़ा है। जो बिगड़ गया है उसको भी उठाकर संभाला जा सकता है। राजनीति में कोई किसी का मित्र नहीं होता केवल शक्ति ही मित्र है—शक्ति ही जीवन है और शक्ति ही अजर-अमर भारत है—इसी सत्य को श्री बी० एम० कौल ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक "अनकही कहानी" के पृष्ठ ३६४ पर अंकित किया है—"चीन हो, पाकिस्तान हो अथवा कोई और देश हो, हमारी बात का वह तभी सम्मान करेगा जब हम सचमुच शक्तिशाली होंगे अन्यथा हमारी ओर कोई ध्यान नहीं देगा।

अभय नगर, अलीगढ़ — ज्ञानदेव भारतीय

कहानी

श्री गुरुदत्त

कविपुत्र शुक्राचार्य अपनी कुटिया के द्वार पर चिन्ता-ग्रस्त बैठे हुए थे। वे इस समय प्रौढ़ावस्था के हो चुके थे और मध्याह्नोत्तर के सूर्य की भाँति ढलते यौवन का चिन्तन कर रहे थे। चिन्ता समीप आ रही मृत्यु की नहीं थी। वे जानते थे कि मृत्यु तो आनी ही है। यह प्रकृति का नियम है। जो होना है, उसकी चिन्ता करना आचार्य को युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता था।

आचार्य जी की चिन्ता का विषय उनकी इकलौती पुत्री थी। लड़की, देवयानी इस समय अठारह वर्ष की युवती हो चुकी थी। उसका विवाह होना चाहिए था। अन्यथा, जिस समाज के वे पुरोहित थे, उस समाज के चरित्र को वह स्वीकार कर लेगी, इस भय से वे शंकित थे।

शुक्राचार्य दानवों के राजा वृषपर्वा के पुरोहित थे और आचार्य की लड़की देवयानी राजा वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा की समवयस्क होने से सखी थी। दोनों सखियाँ इकट्ठी मिलती थीं। परस्पर मन की बातें कहतीं और खेलती-कूदती भी थीं। शर्मिष्ठा और देवयानी वन-विहार और जल-विहार में बहुत अधिक रुचि रखती थीं।

दानव प्रायः असुर थे। अर्थात् वे शारीरिक भोगों को ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य मानते थे। अतः राजा वृषपर्वा के भवन में ऐसा आमोद-प्रमोद का वातावरण था कि लड़की के उसमें रत हो जीवन विनष्ट कर लेने की सम्भावना पर ही, आचार्य चिन्ता कर रहे थे।

इस चिन्ता में एक आशा की किरण थी। उनका एक शिष्य कच था। कच महर्षि अंगिरा का पौत्र और महर्षि बृहस्पति का ज्येष्ठ पुत्र था। कच इन दिनों आचार्य के पास संजीवनी विद्या सीखने के लिये आया हुआ था। शुक्राचार्य महर्षि अंगिरा के शिष्य थे। बृहस्पति और शुक्राचार्य दोनों महर्षि अंगिरा से इकट्ठे पढ़ते थे और गुरुभाइयों में बहुत ही उग्र प्रतिस्पर्धा चलती थी। शुक्राचार्य अधिक प्रतिभा रखते थे, परन्तु बृहस्पति, पुत्र होने से, महर्षि के अधिक प्रिय थे। शुक्राचार्य इससे अत्यन्त विक्षुब्ध रहते थे। इस प्रतिस्पर्धा का परिणाम द्वेष में प्रकट हो रहा था। यही कारण था कि शुक्राचार्य जब विद्या प्राप्त कर चुके तो देवताओं को छोड़ दानवों के राज्य में जा रहने लगे। वहाँ रहते हुए ही आचार्य ने अपने तपोबल से संजीवनी विद्या को प्राप्त किया और जब दानवों को इस बात का पता चला तो उन्होंने महर्षि शुक्राचार्य को अपना पुरोहित बना लिया।

दानवों के नगर के बाहर, वन में एक कुटिया बनाकर आचार्य रहते थे और वहीं पर उनके घर ही देवयानी उत्पन्न हुई। देवयानी अपने सौन्दर्य से राजा की पुत्री शर्मिष्ठा के मन में ईर्ष्या उत्पन्न करने लगी थी।

आचार्यजी ने कच को शिष्य बनाना इस शर्त पर स्वीकार किया था कि वह ब्रह्मचर्य का व्रत पालन करता हुआ रहेगा और कच इस व्रत का बहुत दृढ़ता से पालन कर रहा था। उस असुरों के नगर में, जहां भोग-विलास ही जीवन का लक्ष्य माना जाता था, वहाँ एक सुन्दर युवक से ब्रह्मचर्य व्रत का पालन अति कठिन कार्य था। इस पर भी कच इसका नियम से पालन कर रहा था।

कच को आचार्यजी के पास संजीवनी विद्या सीखने के लिये आये पाँच वर्ष हो चुके थे।

एक दिन देवयानी राजभवन में सखि शर्मिष्ठा से मिलकर लौटी तो अपने पिता को चिन्ताग्रस्त देख, उनके चरणों में बैठ पूछने लगी, 'पिताजी! आज आपका मुख मलिन क्यों हो रहा है?'

'मैं आज विचार कर रहा था कि इस देश में रहते हुए तुम्हारा उद्धार होना कठिन है। अतः यहाँ से चल देना चाहिये।'

'मेरे उद्धार से आपका क्या अभिप्राय है?'

'बेटी! तुम्हारा विवाह होना है और यहाँ तुम्हारे योग्य कोई ब्राह्मणकुमार दिखाई नहीं दे रहा।'

'पर पिताजी! एक तो है। आपके शिष्य तथा महर्षि अंगिरा के पौत्र और महर्षि बृहस्पति के पुत्र हैं।'

'परन्तु बेटा! वह तो हमारे विपक्षी दल का है।

वह यहां इस कारण आया हुआ है कि मेरी संजीवनी विद्या सीख ले और फिर भावी देवासुर-संग्राम में, जैसे मैं युद्ध में मृत असुरों को जीवित कर देता हूँ, वैसे ही वह मृत देवताओं को जीवित कर सके। मैं उसे यह विद्या नहीं सिखा रहा। यदि तुमने उससे विवाह कर लिया तो मुझे वह विद्या सिखानी पड़ेगी।'

'पर, पिताजी ! मैं उससे प्रेम करने लगी हूँ। वह बहुत अच्छा है। राजा की कन्या और मेरी सखी शर्मिष्ठा भी उससे विवाह की इच्छा करने लगी है।

'मुझे ज्ञात हुआ है कि एक दिन जब वह गउएँ चरा रहा था, शर्मिष्ठा वहाँ जाकर उससे मिली थी। उसने उससे प्रेम की भिक्षा माँगी थी, परन्तु महर्षि पुत्र ने उसका तिरस्कार कर दिया था। उसने कहा था कि उसने आपके सामने ब्रह्मचर्य व्रत के पालन का वचन दिया हुआ है।'

'परन्तु, क्या वह तुमसे विवाह करेगा ?'

'मुझे लक्षण ऐसे ही प्रतीत होते हैं। वह नित्य मेरे लिए वन में से फूल लाता है और बहुत रुचिपूर्वक मेरी बेणी सजाया करता है। मेरे लिए वह अन्य सेवा-कार्य भी करता रहता है।'

'परन्तु बेटी ! यह नहीं होगा।'

लड़की ने आचार्य के घुटनों पर अपना सिर रख सिसकियाँ भरते हुए कहा,

'पर, मैं तो उसके बिना जीवित नहीं रह सकूँगी।'

शुक्राचार्य लड़की की बड़ी-बड़ी आँखों में आँसू देख पिघल गये और बोले, 'अच्छा ! मैं उससे पता करूँगा कि वह तुम्हारे विषय में क्या भावना रखता है ?'

(२)

देवयानी और कच को परस्पर हेल-मेल से रहते देख शुक्राचार्य अपने मन को तैयार कर रहा था कि वह अपनी लड़की अपने प्रतिद्वन्द्वी के पुत्र से विवाह दे। वह इसमें किसी प्रकार का रस प्राप्त नहीं कर रहा था, परन्तु देवयानी के मनोभावों को देख वह मन-ही-मन कच को अपने दामाद के रूप में विचार करने लगा था। इस पर भी उसे वह अपनी संजीवनी विद्या देने के लिए तैयार नहीं था।

एक दिन सायंकाल कच वन से, जहाँ वह गौएँ चराने गया हुआ था, नहीं लौटा। गौएँ अरक्षित आश्रम में आ गयीं और अपने स्थान पर दूध दोहे जाने के लिए खड़ी थीं।

देवयानी अपनी कुटिया के द्वार पर खड़ी पश्चिम की ओर देख रही थी। आचार्यजी ने उससे पूछा, कच कहाँ है ?'

'पिताजी ! मुझे सन्देह हो रहा है कि दानवों ने उसे मार डाला है। आज गौएँ अरक्षित आश्रम में लौटी हैं।

इस पर आश्चर्य गम्भीर हो विचार करने लगे। उन्हें मौन देख चिन्तातुर देवयानी ने कहा, 'मैं आज राज्य प्रासाद में गयी थी। वहां शर्मिष्ठा और अन्य दानव कन्यायें मेरी ओर देख-देख मुस्कराती रही थीं। शर्मिष्ठा ने पूछा भी था कि मेरी, ब्रह्मचारी कच से कैसी पट रही है ? मैंने उनके मुस्कुराने और इसे विशेष पूछने पर विस्मय तो किया था, परन्तु मैं अब विचार करती हूँ तो उनके व्यवहार के विशेष अर्थ समझने लगी हूँ। मेरा मन कहता है कि दानवों ने उसे मार डाला है।'

आचार्यजी ने अपनी संजीवनी विद्या का स्मरण कर कच को पुकारा और देखते-देखते जंगल के बहुत से श्वान और सियार कुटिया के सामने आ व्याकुल हो छटपटाने लगे। तदनन्तर जानवरों के पेट फट गये और देखते-देखते कच का शरीर पुनः संगठित हो गया और वह जीवित हो, हाथ जोड़ गुरू जी के सम्मुख आ खड़ा हुआ।

आचार्यजी के पूछने पर कच ने बताया, 'मैं वन में भ्रमण कर रहा था कि कुछ दानव आये और मेरा नाम जान कर मुझ पर टूट पड़े। मुझे मार डाला और फिर मेरे शरीर के मांस को इन कुत्तों और सियारों को खिला दिया।'

आचार्य जी ने बताया, 'देवयानी चाहती थी कि तुमको पुनः जीवित कर दिया जाये।'

कच देवयानी के प्रति कृतज्ञता अनुभव करने लगा और वह अधिकाधिक तत्परता के साथ गुरु कन्या की सेवा आदर-सत्कार करने लगा। अब दोनों इकट्ठे वन जाने लगे। वहाँ कच बांसुरी बजाता तो देवयानी गीत गाती। इस प्रकार दोनों में स्नेह बढ़ता जाता था।

एक दिन शर्मिष्ठा ने देवयानी को बुला भेजा। यद्यपि वह समय उसका कच के साथ वन-विहार का था, परन्तु शर्मिष्ठा के आग्रह को वह टाल नहीं सकी। जब वह

प्रासाद में गयी तो वहाँ खेल-कूद में वह सायंकाल तक व्यस्त रही। सायंकाल घर आयी तो कच अभी तक वन से नहीं लौटा था। इस पर उसे चिन्ता लगने लगी। बहुत देर तक वहाँ उसकी प्रतीक्षा करती रही और वह नहीं आया।

वह चिन्तित पिता की कुटिया में गयी तो आचार्य आज भोजन के बाद मद्य सेवन कर सोने की तैयारी में थे। देवयानी ने पिताजी को समय से पूर्व शय्या पर जाते देख पूछ लिया, 'पिताजी ! क्या है आज ?'

'आज वृषपर्वा ने बहुत ही सुवासित एवं मधुर मद्य भेजी है। उसकी सुगन्धि को जान मैं सब की सब पी गया हूँ। इससे नींद आ रही है।'

'पर आपका शिष्य आज फिर वन से नहीं लौटा। गौएँ को आये तो बहुत काल हो गया है।'

'अवश्य उसकी फिर हत्या हो गयी है।'

'पिताजी ! उसको जिला दीजिये।'

'बेटी ! ऐसा प्रतीत होता है कि वृषपर्वा ही उसको मरवाता है। यदि उसको पता चला कि मैं उसको बार-बार जीवित कर देता हूँ तो वह मुझसे नाराज़ हो जायेगा।'

'परन्तु, पिताजी ! राजा वृषपर्वा को विदित होना चाहिए कि आप उसके अधीन नहीं। वह आपकी अनुग्रह का याचक है। इस कारण आपको उससे भयभीत होने में कोई कारण नहीं। उसे आपके रुष्ट हो जाने का भय होना चाहिए। वह आपके बनने वाले दामाद की बार-बार हत्या कर रहा है।'

'परन्तु, देवयानी ! कच तुमसे विवाह करेगा क्या ?'

'मुझे विश्वास हो रहा है कि वह मुझे स्वीकार कर लेगा।'

'तब मैं उसे पुनः जीवित कर देता हूँ।'

परन्तु इस बार कच को जलाकर उसकी भस्म को मद्य में मिला दी गई थी और वह मद्य आचार्यजी को ही पिला दी गई थी। आचार्यजी के आह्वान पर कच आचार्य जी के उदर में से बोला कि मैं यहाँ बैठा हूँ।'

आचार्यजी इससे बहुत परेशान हुए। उन्होंने विवश हो कह दिया, 'बेटी, देवयानी ! इस बार मैं उसे जिला नहीं सकता। वह जियेगा तो मेरा पेट फाड़ कर बाहर आ जायेगा और मैं मर जाऊँगा।'

इस पर देवयानी विह्वल हो रोने लगी। आचार्यजी लड़की का विलाप सुन व्याकुल हो उठे। आखिर उनको एक योजना सूझी। उन्होंने देवयानी से कहा,

'एक ही सूरत है। वह यह कि मैं उसको संजीवनी विद्या सिखा दूँ। तब वह पेट से बाहर निकलेगा। मैं मर जाऊँगा। उसे फिर उस विद्या द्वारा, मुझे जीवित कर देना चाहिये।'

'तो पिताजी ! यह कीजिये न।'

'परन्तु, यदि उसने मुझे न जिलाया तो ?'

'वह अवश्य आपको जिला देगा। मैं कहूँगी तो वह इनकार नहीं कर सकता।'

'अच्छी बात है।' इतना कह आचार्य जी ने अपने पेट में स्थित कच को संजीवनी मन्त्र सिखा दिया। साथ ही उसे कह दिया कि जब वह जीवित हो पेट से बाहर आये तो उसके गुरुजी मर जाएँगे। अतः उसे फिर गुरुजी को जिलाना होगा।

(३)

कच पुनः जीवित हो आचार्य जी के पेट से बाहर आ गया। बाहर आ उसने गुरुजी को पुनः जीवित कर दिया। अब कच को संजीवनी विद्या का ज्ञान हो गया था। अतः यह निश्चय ही था कि वह देवलोक को लौट जायेगा। साथ ही कच के बार-बार मारे जाने से आचार्य जी का मन दानवों से विक्षुब्ध हो गया था। वे भी दानव-लोक छोड़ कहीं चले जाना चाहते थे। इस कारण आचार्य जी ने लड़की से कहा, 'देवयानी ! अब तुम कच से निश्चय कर विवाह कर लो। वह अब देवलोक लौट जाने की बात विचार कर रहा है।'

देवयानी ने शृंगार किया और अपने पूर्ण सौन्दर्य और यौवन का प्रदर्शन करते हुए वह कच के सम्मुख जा उपस्थित हुई। कच उसे इस रूप में देख संकोच अनुभव करने लगा। उसने उसे आया देख हाथ जोड़ नमस्कार कर पूछ लिया, 'देवयानी बहिन ! किधर जा रही हो इस प्रकार ?'

देवयानी ने टेढ़ी दृष्टि से देखते हुए और अपने सौन्दर्य का उस पर पूर्ण प्रभाव उत्पन्न करने का यत्न

करते हुए कहा, 'सुना है आप जा रहे हैं ?'

'हाँ, भगिनी ! मेरा यहाँ आने का उद्देश्य पूर्ण हो गया है ! मैं गुरुजी का आशीर्वाद प्राप्त कर चुका हूँ। अतः अब जाने का विचार है।'

'मैं तुम्हारे साथ चलने के लिए तैयार हुई हूँ।'

'किस प्रयोजन से ?'

'पत्नी बन कर तुम्हारे साथ रहने के लिए।'

'पत्नी ? तुम ? यह कैसे हो सकता है ! मैं तो तुम को बहिन मानता रहा हूँ। तुम गुरु कन्या होने से अन्य कुछ हो भी नहीं सकतीं।'

'पर मैं तो आप में पति की भावना रखती हूँ।'

'मुझे शोक है कि तुमने यह मिथ्या भावना बना ली है। मैं तो जिसे मन में बहिन मानता हूँ, उसे पत्नी नहीं मान सकता।'

इस पर देवयानी विनय-अनुनय करने लगी। परन्तु कच अपने संकल्प पर आरूढ़ रहा और कहता रहा कि वह उसकी बहिन-मात्र ही है और बहिन ही रहेगी।

इस पर देवयानी को क्रोध चढ़ आया, 'तो तुम यहाँ आये किसलिए थे ?'

'मैं गुरुजी से संजीवनी विद्या सीखने आया था।'

'तो वह विद्या तुमने पिताजी से सीखी अवश्य है, परन्तु तुम किसी अन्य को सिखा नहीं सकोगे। यह मेरा शाप है।'

इस पर तो कच अत्यन्त दुःखी हुआ, परन्तु वह समझ गया कि यह आसुरी प्रवृत्ति का प्रदर्शन ही है। यह ब्राह्मण कन्या इन असुरों में रहती हुई अपने शारीरिक भोगों से प्रभावित उसके मन की शुद्ध और पवित्र भावना को समझ नहीं सकती। यह वासनाभिभूत ठीक और गलत में भेद नहीं कर सकी। उसके मुख से निकल गया—

'देवयानी बहिन ! यह एक अत्यन्त हीन प्रवृत्ति है। इस शरीर से ऊपर भी कुछ है और उसके आदेशों की अवहेलना भविष्य में बहुत हानि भी पहुँचा सकती है।'

'हम इस शरीर के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं मानते।'

'तो सुन लो। तुमको यह शरीर भी सदा प्राप्त नहीं रहेगा। पूर्व-जन्म के कर्मों के फल से तुम इसे बहुत सीमित काल के लिए ही पा सकोगी और फिर शीघ्र ही इससे वंचित कर दी जाओगी।'

'तो तुम भी मुझे शाप दे रहे हो ?'

'नहीं, बहिन ! मैं भविष्य-वाणी कर रहा हूँ। देह के भोगों को ही सब कुछ मानने वाले स्वयं ही शापित होते हैं।'

●

पृष्ठ २३ का शेष)

बचाना समाज के शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक स्तर को बनाये रखने के लिए आवश्यक है ?

(५) क्या यह सत्य नहीं कि शिक्षण संस्थाओं और नागरिक जीवन को आज पृथक्-पृथक् नहीं रखा जा सकता ?

(६) क्या यह आवश्यक नहीं कि लेखकों कलाकारों इत्यादि को उक्त पाँच प्रकार के विकार उत्पन्न करने से रोका जाये ?

यह कैसे रोका जाये ? इसका उत्तर सरल है। पूर्ण समाज में शील और मर्यादा का एक माप-दण्ड रखना होगा। वह माप-दण्ड विद्वान, शुद्ध, पवित्र विचार के और अनुभवी लोग निर्माण करेंगे। इस माप-दण्ड के अनुसार विकृत मस्तिष्क वाले कलाकारों से समाज की रक्षा की जाये।

अतः कानून में कोई ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए कि किसी भी कलाकृति तथा ज्ञान-विज्ञान के ग्रन्थ पर कानून लागू करने से पूर्व उसको एक विद्वद्-मण्डल के सामने उपस्थित किया जाये। यह 'सैंसर बोर्ड' कम-से-कम पाँच विद्वानों का हो। उसमें ज्ञान-विज्ञान, समाजशास्त्री, शिक्षा विशेषज्ञ इत्यादि लोग हों और कोई भी ४० वर्ष से कम आयु का, अविवाहित और सन्तानविहीन व्यक्ति न हो।

इसके साथ की हमारा यह मत है कि कानून में ऐसा प्रबन्ध हो कि उक्त विद्वद्-मण्डल से दोषयुक्त मानी कृति जप्त हो। उसकी जप्ती को छुड़ाने के लिए कलाकार को अधिकार हो कि वह न्यायालय का द्वार खटखटा सके।

सरकार कलाकार पर मुकद्दमा न चलाये। कलाकार दण्ड का भागी नहीं हो, परन्तु उसकी कलाकृति यदि विद्वत्मण्डल से दोषयुक्त मानी जाये तो विनष्ट कर दी जाये।

हमारा यह कहना है कि शील और मर्यादा का उल्लंघन करने वाले साहित्य पर प्रतिबन्ध तो सदैव रहा है। वह प्रतिबन्ध विद्वानों का था। वही अब भी हो।

धर्म चर्चा

(लेखक—श्रीरामशरण वशिष्ठ)

एक समय राजा जनक के यज्ञस्थान में उपस्थित ऋषियों ने याज्ञवल्क्य से बहुत प्रश्न किये। उनमें एक प्रश्न अरुण मुनि के पुत्र उद्दालक ने किया। उसने पूछा, 'हे याज्ञवल्क्य ! आप उस अन्तर्यामी की बात बताओ जो सारे विश्व का कारण रूप है।'

याज्ञवल्क्य बोले, 'हे गौतम ! वह कारण रूप परमात्मा इस पृथ्वी के भीतर विद्यमान होता हुआ उसके बाहिर भी है। जिसने इस पृथ्वी को बनाया है पर जिसको यह पृथ्वी नहीं जानती, जो पृथ्वी को नियम में रखता है वह अन्तर्यामी है, वह अमृत है।

'जो जलों के अन्दर व्यापक है और जलों के बाहर भी है, जो जलों को बनाता है पर जिसको जल नहीं जानते। जो जलों को नियम में रखता है वह परमेश्वर अन्तर्यामी है और अमर है।

'जो अग्नि में, वायु में, अन्तरिक्ष में, द्यू-लोक में व्यापक है, उनके भीतर और बाहर है, जिसने उनको रचा है, जो उसको नहीं जानते। पर जो इन सबको नियम में रखता है, वह परमेश्वर अन्तर्यामी है, वह अमर है।

'जो ब्रह्मा, सूर्य में प्रकाश देता है, जो सूर्य अन्दर और बाहर वर्तमान है, जिसने सूर्य को बनाया है और उसे नियम में रखता है, पर सूर्य जिसको नहीं जानता, वह अन्तर्यामी है, वह अमर है।

'जो चन्द्रलोक में, तारागण में, नक्षत्रों में, आकाश में और चारों दिशाओं में व्यापक है, जो उनका रचने वाला है, पर जिसको वे नहीं जानते, वह परमात्मा अन्तर्यामी हैं, वह अमर है।

'वह इन सबको नियम में रखता है, जिसका नियम अटल है।

'जो शक्ति सब पदार्थों में वास करती है, उनके अन्दर और बाहर भी है जो उनको रचती है, जिसको पदार्थ नहीं जानते, वह अन्तर्यामी है, वह अमृत है।

'हे सौम्य ! जो परमेश्वर तेरे आत्मा को शरीरों से जोड़ता है, जो कर्मों का फल देता है, जो आत्मा में विराजमान है और जो आत्मा के बाहर भी है जो सारी सृष्टि को नियम से चला रहा है, जो शरीरों को बनाता है, वह अन्तर्यामी है।

'हे गौतम ! तू उसको जान। उसको जानकर सब कुछ जाना जाता है। उसके जाने बिना आवागमन से मनुष्य नहीं छूटता। यह ईश्वर सब भूतों में, सब प्राणियों में रहता है और उनके बाहर भी है। जिसको भूत प्राणी नहीं जानते जो सबको नियम में रखता है, वह ईश्वर अन्तर्यामी है वह अमृत है।'

इस उपमा को देकर याज्ञवल्क्य ने कहा, 'हे उद्दालक ! तेरा आत्मा भी तेरे शरीर में है। जीवन का आधार है, वह भीतर स्थित सारी शरीर की क्रियाओं का संचालक है। वह आत्मा प्राण में रहता हुआ प्राण से बाहर भी है। वह सब अंगों में व्यापक है। वह वाणी में, चक्षु में, श्रोत्र में, त्वचा में, मन में, बुद्धि में, रहता हुआ इनके बाहर भी है। जो इनका रचयिता है पर ये उसको नहीं जानते। वह इन सबको नियम में रखता है इनका कार्य लेता है। वह तेरा आत्मा है। वह सूक्ष्म है। परोक्ष पदार्थ नहीं है। शरीर का सारा व्यवहार करता है। वह आँख से देखता है, श्रोत्र से सुनता है, मन से मनन करता है, बुद्धि से ज्ञान प्राप्त करता है। इस आत्मा से अन्य कोई कर्त्ता नहीं है। शरीर के सब कार्य वही करता है पर उसको यह शरीर नहीं जानता। यह इन्द्रियां नहीं जानतीं। वह प्राण नहीं जानता। हे उद्दालक ! तू उस अपने आत्मा को जान। उसके बिना जीवन नहीं है। उसके निकल जाने पर शरीर को मृतक कहते हैं।

'हे सौम्य ! उसके जाने बिना मोक्ष प्राप्ति नहीं। वह तेरा आत्मा नित्य है अमर है। यह शरीर आत्मा नहीं है। यह इन्द्रियां आत्मा नहीं हैं। यह मन बुद्धि आत्मा नहीं है। यह केवल आत्मा के साधन हैं। ये वृत्तियां भी आत्मा नहीं हैं, परन्तु इनका संचालक, इनका साक्षी और प्रेरक वह आत्मा है। वह कभी मरता नहीं। वह काटे से कटता नहीं। हे, उद्दालक ! तू उस आत्मा को जान।'

शाश्वत वाणी के विशेषांक के रूप में

भारतीय राजनीति

रामायण काल से आधुनिक काल तक

पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इस वर्ष का नवम्बर-दिसम्बर अंक उपर्युक्त विषय पर विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया जायगा। इस विशेषांक में विद्वान पुरुषों के लेख प्रकाशित किये जाएँगे। हमारे कुछ लेखक हैं—श्री पं० भगवद्दत्त, श्री प० रामगोपाल शास्त्री, वैद्य गुरुदत्त, श्री सीताराम गोयल, प्रो० बलराज मधोक, श्री रामस्वरूप। अन्य विद्वानों से उनके लेख प्राप्त करने के लिये सम्पर्क स्थापित किया जा रहा है। विशेषांक का मूल्य होगा सात रुपये, परन्तु शाश्वत वाणी के वार्षिक ग्राहकों को बिना मूल्य भेजा जायेगा। पाठकों से निवेदन है कि वे ध्यान रखें, शुल्क समाप्त होने से पूर्व ही वे आगामी वर्ष का शुल्क भेजना न भूलें।

वार्षिक ग्राहकों के अतिरिक्त पाठकों तथा रुचि रखने वालों के लिये यह विशेषांक ७ रुपये में ही प्राप्त हो सकेगा। अतः पाठकों से निवेदन है कि अधिकाधिक संख्या में अपने मित्रों तथा रुचि रखने वालों को शाश्वत वाणी का वार्षिक ग्राहक बनाएँ।

शाश्वत वाणी
३०।९० कनाट सरकस, नई दिल्ली-१

आपका पुस्तकालय और हमारा सहयोग

१. हमारी पुस्तकालय योजना के सदस्य बनिये। केवल दो रुपये मनीआर्डर द्वारा भेजकर आप हमारे सदस्य बन सकते हैं।

२. हमारी नटराज पाकेट बुक्स में से आप अपनी पसन्द की १५ रुपये की चुनी हुई पुस्तकें मंगवाइये और हम केवल १३ रुपये में ये पुस्तकें आपको भेजेंगे। डाक व्यय लगभग दो रुपये हम देंगे। इसके साथ ही—

आपके घर की शोभा....

आपका पुस्तकालय

आपके पुस्तकालय की शोभा...

श्रेष्ठ, रोचक तथा प्रेरणात्मक साहित्य

अपना निजी पुस्तकालय बनाइये....

३. एक लोहे की तार का बना हुआ सुन्दर रैक जिसमें आप अपनी पुस्तकें लगा सकते हैं, बिना मूल्य हम अपनी ओर से आपको भेंट में देंगे।
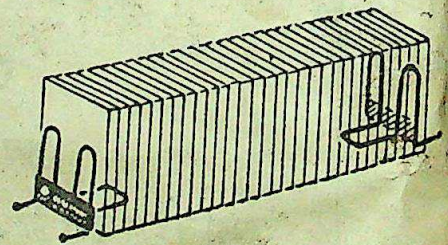
४. प्रति दो मास बाद जब हमारी नयी पुस्तकें प्रकाशित होंगीं, हम आपको सूचना भेजेंगे। तथा ७ रुपये मूल्य की पुस्तकें छः रुपये में आपको भेजी जायंगी। यदि नवीन प्रकाशनों में से कोई पुस्तक आप नहीं लेना चाहेंगे तो आप उसके स्थान पर कोई अन्य उसी मूल्य की पुस्तक मंगवा सकेंगे।

५. बीच की अवधि में कभी भी आप ७ रुपये मूल्य की पुस्तकें केवल छः रुपये में मंगवा सकेंगे।

६. हिन्दी में प्रकाशित होने वाली कोई भी पुस्तक आप हम से मंगवा सकते हैं। परन्तु उस पुस्तक पर कोई छूट हम नहीं दे सकेंगे। वह पुस्तक बाजार से उपलब्ध कर हम आपको भेजेंगे। उस पुस्तक पर डाक व्यय में कुछ सुविधा देने का प्रयत्न करेंगे।

३०/६० कनॉट सरकस, नई दिल्ली-१

भारतीय संस्कृति परिषद के लिए अशोक कौशिक द्वारा संपादित
एवं राष्ट्र भारती प्रेस, दिल्ली में मुद्रित तथा ३०/६० कनॉट सरकस, नई दिल्ली से प्रकाशित।